Vol. 5 No.2 Vijayadashami
Vikrami Samvat 2077, Year 2020

ISSN -: 2456-3579
Impact Factor
2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF

http://www.gorakhpurjournals.in

AN INTERDISCIPLINARY, BILINGUAL, BI-ANNUAL, A PEER REVIEW OR REFEREED, INDEXED & OPEN ACCESSES INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL

WRITERS VIEW

Editor
DR. AJAY KUMAR SINGH
SUBODH KUMAR MISHRA

Impact Factor
2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SIIF

ISSN -: 2456-3579

Vol. 5 No.2 Vijayadashmi
Vikram Samvat 2077, Year 2020

Visit us
http://www.gorakhpurjournals.in

An Interdisciplinary, bilingual, bi-annual, a peer review or refereed, Indexed & Open Accesses International Research Journal

WRITERS VIEW

Editor
Dr. Ajay Kumar Singh
Subodh Kumar Mishra

Patron

Prof. Himanshu Chaturvedi (Gorakhpur)

ADVISORY BOARD

Prof. A. S. Rawat, *History* (Nainital, Uttrakhand)
Prof. V. K. Srivastava, *Geography* (Sagar, M.P)
Prof. Shushil Tiwari, *Philosophy* (Gorakhpur)
Prof. C. M. Aggrawal, *History* (Almoda, Uttrakhand)
Prof. Ashok Kumar Singh, *History* (Varanasi)
Prof. Nidhi Chaturvedi, *History* (Gorakhpur)
Prof. Hriday Narayan, *History*
(Hankuk University of foreign Studies, Seoul, Korea)
Prof. Abha R. Pal, *History* (Raipur, Chhattisgarh)
Prof. Vipula Dubey, *History* (Gorakhpur)
Prof. Kirti Pandey, *Sociology* (Gorakhpur)
Prof. Geeta Srivastava, *History* (Meerut)
Prof. M M Pathak, *Sanskrit* (Gorakhpur)
Prof. Sumitra Singh, *Education* (Gorakhpur)
Prof. Sandeep Kumar, *Economics* (Gorakhpur)
Prof. Shikha Singh, *English* (Gorakhpur)
Prof. Ashish Srivastava, *Commerce* (Gorakhpur)
Prof. Vinod Kumar Singh, *Defense and Strategic* (Gorakhpur)
Dr. Rajesh Nayak, *History* (Chapara, Bihar)
Dr. Vimlesh Mishra, *Hindi* (Gorakhpur)
Dr. Pragya Mishra, *History* (Faizabad)
Mr. Alok Kumar Yadav, *Law* (HNB Central Unversity, Tihari Campus)
Dr. Dinesh Kumar Gupt, *Phycology* (Aligarh)
Dr. Ranjana Mishra, *Home Science* (Delhi)

EDITORIAL BOARD

Dr. Praveen Kumar Tripathi
Dr. Abhishek Kumar Singh
Dr. Anjana Rai
Dr. Arbind kumar Gupta
Dr. Pragyesh Kumar Mishra
Mr. Shachindra Mohan

शोध पत्र में व्यक्त विचारों, सिद्धांतों, तथ्यों एवं संकल्पनाओं की जिम्मेदारी स्वयं लेखक के है। सम्पादक मण्डल की कोई जिम्मेदारी नहीं होगी।

"The Responsibility for the facts given and opinions expressed in Articles/Research paper/Review in this journal, is solely that of the individual Author and not of the editor"

Authors your Research Paper on Mail- editor.writersview@gmail.com
editor.gorakhpurjournals@gmail.com

Printed in India
Printed, published and owned by **Gorakhpur Journals** Printed at LAXDEEP DIGITAL INDIA North East Delhi.

Scientific Journal Impact Factor

CERTIFICATE OF INDEXING (SJIF 2017)

This certificate is awarded to

Writers View
(ISSN: 2456-3579 (E) / 2456-3579 (P))

The Journal has been positively evaluated in the SJIF Journals Master List evaluation process
SJIF 2017 = 4.584

SJIF (A division of InnoSpace)

SJIFactor Project Manager
International Advisory Services
INNOSPACE INTERNATIONAL

SJIFactor Project

Scientific Journal Impact Factor

CERTIFICATE OF INDEXING (SJIF 2018)

This certificate is awarded to

Writers View
(ISSN: 2456-3579)

The Journal has been positively evaluated in the SJIF Journals Master List evaluation process
SJIF 2018 = 5.346

SJIF (A division of InnoSpace)

SJIFactor Project Manager
International Advisory Services
INNOSPACE INTERNATIONAL

SJIFactor Project

WRITERS VIEW

An Interdisciplinary, bilingual, bi-annual, a peer review or refereed, Indexed & Open Accesses International Research Journal

Vol. 5 No.2 Vijayadashmi ***Vikram Samvat 2077, Year 2020***

Content

क्रम	शोध पत्र, लेखक	पृष्ठ सं.
1	भारतीय संस्कृति में वैनतेय गरुड़ डॉ. रामप्यारे मिश्र	1-10
2	दादा भाई नौरोजी का आर्थिक चिंतन (धन निष्कासन के विशेष संदर्भ में) डॉ. अभय कुमार सिंह	11-19
3	भारत में कानूनी शिक्षा के बदलते आयाम डॉ. त्रियुगी नारायण मिश्र	20-24
4	नक्सलवाड़ी : एक मूल्यांकन डॉ. अभिषेक सिंह	25-35
5	दक्षिण भारत की ग्राम समितियाँ और जल-प्रबन्धन डॉ. विनोद कुमार	36-41
6	दक्षिण और दक्षिण पूर्वी एशिया में भारतीय दर्शन डॉ. अंजना राय	42-47
7	मुद्राओं के आलोक में भारत-रोम व्यापार डॉ. मणिन्द्र यादव	48-57
8	उत्तराखण्ड़ में कृषि का विविधिकरण एक आर्थिक सूक्ष्म विश्लेषण डॉ. महेश कुमार	58-68
9	**The effect of Childhood trauma on later life behaviour** **Dr. Aparna Pathak**	69-84
10	रामायण में रुद्र-शिव का ऐतिहासिक विश्लेषण डॉ. शत्रुजीत सिंह	85-90
11	आचार्य सतीश चन्द्र मित्तलजी का इतिहास विषय में योगदान डॉ. सुधाकर मिश्र	91-93
12	**Breast Feeding and Mother's Practices** **Dr. Priyanka Raghav**	94-98

verify UGC API

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course
	(c) MOOCs		
	Development of complete MOOCs in 4 quadrants (4 credit course)(In case of MOOCs of lesser credits 05 marks/credit)	20	20
	MOOCs (developed in 4 quadrant) per module/lecture	05	05
	Content writer/subject matter expert for each module of MOOCs (at least one quadrant)	02	02
	Course Coordinator for MOOCs (4 credit course)(In case of MOOCs of lesser credits 02 marks/credit)	08	08
	(d) E-Content		
	Development of e-Content in 4 quadrants for a complete course/e-book	12	12
	e-Content (developed in 4 quadrants) per module	05	05
	Contribution to development of e-content module in complete course/paper/e-book (at least one quadrant)	02	02
	Editor of e-content for complete course/ paper /e-book	10	10
4	**(a) Research guidance**		

WRITERS VIEW
An Interdisciplinary, bilingual, bi-annual, a peer review or refereed, Indexed & Open Accesses International Research Journal
Vol. 5 No. 2 VIJAYADASHMI, Vikram Samvat 2077 Year 2(
ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

भारतीय संस्कृति में वैनतेय गरुड़

डॉ. रामप्यारे मिश्र

शोध सारांश

वैनतेय, विष्णुरथ, श्येन, तार्क्ष्य, खगेन्द्र, विहग, विहंग, विहंगम, पक्षिराज, व्योमविहारी, अरुणानुज, विनतासुत, विनतात्मज, विनितानन्दन आदि अभिधानों या नामों से गरुड़ भारतीय कला एवं साहित्य में अत्यधिक महिमान्वित हुए। विष्णु और विष्णु के वाहन में तादात्म्य भाव है। जहाँ–जहाँ गरुड़ हैं वहाँ–वहाँ विष्णु हैं। विष्णु सर्वत्र हैं। अतः गरुड़ भी सर्वत्र हैं। अर्थात् ब्रह्माण्ड के प्रत्येक बिन्दु को गरुड़ की गति का स्थान–निबन्धन कहा जा सकता है।

बीज शब्द

सर्पहारी गरुड़, सोमहारी गरुड़, मानवरूप गरुड़, कद्रू–विनितोपाख्यान

असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

शोध विस्तार

महाभारत के आदि पर्व में गरुड़ के नाम के सन्दर्भ में उल्लिखित है–

गुरुभारं समासाद्योड्डीन एष विहंगमः।
गरऽस्तु खगश्रेष्ठस्तमात् पन्नगभोजनः।।

ये आकाश में उड़ने वाले सर्पभोजी पक्षिराज भारी भार लेकर उड़े हैं; इसीलिए (गुरुम् आदाय उड्डीन इति गरुड़ः इस व्युत्पत्ति के अनुसार) ये गरुड़ कहलायेंगे।[1]

वैदिक भाषा में सुपर्ण प्रतीकवाची शब्द था। यज्ञ सुपर्ण है। सम्वतसर सुपर्ण है। स्वयं प्रजापति पुरुष गरुत्मा सुपर्ण है। शीघ्रगामी गरुड़ मन का प्रतीक है।[2] मन से अधिक वेगवान इस संसार में कोई नहीं है। वैदिक देवशास्त्र में उल्लिखित पक्षियों में श्येन का प्रमुख स्थान है। यह श्येन इन्द्र का दूत है और उसके आदेश से आकाश से मधु (सोम) को पृथ्वी पर लाता है–

इन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्ण आ यं ते श्येन उशते जभार। –ऋग्वेद 3/43/7
अधा मे श्येनो मधु आ जहार। –ऋग्वेद 4/18/13

किन्तु इस सोमहारी श्येन का विष्णु के वाहन से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न यह है कि विष्णु का वाहन गरुड़ क्या है ? मैक्डानल तथा हॉपकिन्स[3] का विचार है कि पूर्व से पश्चिम की ओर जाता हुआ सूर्य का बिम्ब ही वैदिक ऋषियों की कल्पना में व्योमविहारी गरुड़ है। सूर्य को शीघ्रगामी श्येन कहा गया है–

रघुः श्येनः पतयदन्धो अच्छा आ सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः।[4]

दशम मण्डल में दो बार सूर्य के लिये 'गरुत्मत्' विशेषण भी आया है जो परवर्ती साहित्य में गरुड़ का वाची है।

डॉ0 गया चरण त्रिपाठी का अभिमत है कि इन दोनों ही विद्वानों का मत भ्रान्तिपूर्ण है। विष्णु को सूर्य का आधिदैविक प्रतीक मानने पर सूर्य–बिम्ब को विष्णु का वाहन गरुड़ मानना औचित्यपूर्ण नहीं लगता। वस्तुतः यज्ञिय अग्नि ही गरुड़ है। अग्नि को 'आकाश का श्येन' कहा गया है।[5] अस्यवामीय सूक्त में भी अग्नि को एक विशाल 'दिव्य सुपर्ण' कहा गया है।[6] अग्नि मनुष्यों के यज्ञ को आकाश में देवों तक ले जाता है। यज्ञिय हवि को वह उसके विभिन्न अधिकारियों के पास वहन करता है; अतः उसकी पक्षी के रूप में कल्पना अत्यन्त स्वाभाविक है। यज्ञ–वेदी के निर्माण के समय कुण्ड में इष्टिकाओं को ऐसे बिछाया जाता है कि उससे एक पंख फैलाकर उड़ते हुए श्येन की आकृति बन जाए। वेदी में अग्नि को स्थापित करते हुए कहा जाता है–

सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद।[7]

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

वाजसनेयी संहिता में अग्नि से कहा गया है कि तुम श्येन होकर आकाश में उड़ जाओ।[8] उखा (अग्निपात्र) में अग्नि को धारण करते हुए उसे एक पक्षी मानकर उसके सिर, नेत्र, पंख आदि की कल्पना की जाती है और उसे आकाश में उड़कर देवों तक हवि पहुँचाने के लिये प्रेरित किया जाता है–

सुपर्णोऽसि गरुत्मान् त्रिवृत् ते शिरो गायत्रं चक्षुः बृहद्रथन्तरे पक्षौ। स्तोमऽआत्मा छन्दांस्यंगानि यजूंषि नाम। साम ते तनूः वामदेव्यम् यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः। सुपर्णोऽसि गरुत्मान् दिवं गच्छ स्वः पत।[9]

शतपथ ब्राह्मण इस मंत्र की व्याख्या करता हुआ स्पष्ट शब्दों में कहता है कि उखा में वर्तमान अग्नि की ही सुपर्ण–गरुत्मान् के रूप में कल्पना की जाती है। अग्नि यज्ञ को देवों तक ले जाने वाला सुनहले पंखों का श्येन है। उसकी यह सामर्थ्य ही गरुड़ है। त्रिवृत्, गायत्री आदि छनद इसके सिर तथा नेत्र हैं। अग्नि तत्व के सिर, नेत्र, पक्ष आदि की कल्पना के कारण यह मंत्र विकृति कहलाता है क्योंकि यह उखारूपी गर्भ में सिक्त अग्निरूपी रेतस् के विकार (अवयवादिविभाजन) की कल्पना करता है–

अथैनमतो विकृत्या विकरोति, इदमेवैतद् रेतः सिक्तं विकरोति।
तस्माद्योनौ रेतः सिक्तं विक्रियते।।
सुपर्णोऽसि गरुत्मान् इति। वीर्य वै सुपर्णो गरुत्मान्।
वीर्यमेवैनम् एतद् अभिसंस्करोत।।[10]

यह अग्निरूप श्येन या गरुड़ विष्णु का वाहन कैसे बन गया इसका कारण सुस्पष्ट है। ब्राह्मण ग्रंथों में विष्णु और यज्ञ का घनिष्ठ तादात्म्य प्राप्त होता है। इस तादात्म्य से जायमान अनेक कथाएँ भी इन ग्रंथों में यत्र–तत्र प्राप्त होती है। अग्नि यज्ञ को वहन करने वाला 'सुपर्ण' पक्षी है अतः इस सुपर्ण या गरुत्मान् का यज्ञरूप–विष्णु का वाहन बन जाना अत्यन्त सरल तथा स्वाभाविक है।

ब्राह्मणोत्तरकालीन साहित्य में इस विष्णु वाहन का सूक्ष्म मानवीकरण कर दिया गया और हनुमान् जी की भाँति इनका भी अर्ध–पक्षी और अर्ध–मानव रूप कल्पित किया गया। गुप्तकालीन गारुड़ोपनिषद् में गरुड़ का मानव रूप में अत्यन्त चित्रात्मक वर्णन किया गया है–

कपिलाक्षं गरुत्मन्तं सुवर्णसदृशप्रभम्।
दीर्घबाहुं बृहत्स्कन्धं नानाभरणभूषितम्।।
आजानुतः सुवर्णाभम् आकण्ठ्योस्तुहिनप्रभम्।
कुं कुमारूणमाकण्ठं शतचन्द्रनिभाननम्।।

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

नीलाग्रनासिकावक्त्रं सुमहच्चारुकुण्डलम्।
दंष्ट्राकरावलवदनं किरीटमुकुटोज्ज्वलम्।।
कुं कुमारुणसर्वांगं कुन्देन्दुधवलाननम्।
विष्णुवाह नमस्तुभ्यम्.....।।[11]

अपने इसी विहग–मानव मिश्रित रूप में गरुड़ को अनेक युद्धों में सक्रिय भाग लेकर अपने नख तथा चक्षु प्रहारों से दानवों को मारते तथा विष्णु की रक्षा करते हुए भी वर्णित किया गया है।[12] पारिजातहरण पर होने वाले कृष्ण और इन्द्र के युद्ध में गरुड़ ऐरावत से लड़ते हैं, वरुण के नागपाश को खंड–खंड कर डालते हैं और चोंच, पंख तथा नखों से देवों को मार भगाते हैं–

पाशं सलिलराजस्य समाकृष्योरगाशनः।
चकार खंडशश्चंच्वा बालपत्रगदेहवत्।।
गरुत्मानपि तुंडेन पक्षाभ्यां च नखांकुरैः।
भक्षयंस्ताडयन् देवान् दारयंश्च चचार वै।।[13]

उनका भोजन सर्प हैं और वेग वायु से भी अधिक बताया गया है। उनका शरीर पर्वत के समान विशाल है और पंख रंग–बिरंगे हैं, अतः जब वे आकाश में उड़ते हैं तो ऐसा लगता है मानो इन्द्रधनुष निकल आया हो। उनके शरीर का सामान्य वर्ण स्वर्ण के समान है और वे पक्षियों के राजा हैं–

स कश्यपस्यात्मभुवं द्विजं भुजगभोजनम्।
पवनाधिकसम्पातं गगनक्षोभणं खगम्।।
भुजगेन्द्रेण वदने निविष्टेन विराजितम्।
अमृतारंभनिर्मुक्तं मन्दराद्रिमिवोच्छितम्।।
शिखिनं बलिनं चैव तप्तकुण्डलभूषणम्।
विचित्रपत्रवसनं धातुमन्तमिवाचलम्।।
पक्षाभ्यां चारुपत्राभ्याम् आवृत्य दिवि लीलया।
युगान्ते सेन्द्रचापाभ्यां तोयदाभ्यामिवाम्बरम्।।[14]

प्रो0 गया चरण त्रिपाठी जी ने वेदों, उपनिषदों, महामात्यों, पुराणों एवं अन्यान्य ग्रंथों में उल्लिखित तथ्य संकलित साक्ष्यों, पाश्चात्य एवं पौर्वात्य विद्वानों के द्वारा स्थापित मतों एवं सिद्धान्तों को सम्यक् अवलोकन, विवेचन एवं विश्लेषणोपरान्त जो अभिमत व्यक्त किया है साथ ही नवीन मौलिक उपस्थापनाओं को स्थापित किया है, वह अत्यन्त ही

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

सराहनीय है। मैं उनके इस वैदूष्य पूर्णग्रन्थ 'वैदिक देवता' के प्रति सविनय कृतज्ञ हूँ जिससे इस शोध–पत्र में सर्वाधिक सहायता मिली।[15]

कद्रू-विनतोपाख्यान

कद्रू–विनतोपाख्यान आदिपर्व के सोलहवें से चौंतीसवें अध्याय तक बिखरा हुआ है। उपाख्यान की कथावस्तु निम्नवत् है–

दक्ष प्रजापति की दो कन्याएँ थीं, कद्रू और विनता। उन दोनों का विवाह महर्षि कश्यप के साथ हुआ था। एक दिन कश्यप ने प्रसन्न होकर उनसे कहा–तुम दोनों मुझसे यथेष्ट वर माँगों। यह सुनकर वे दोनों प्रसन्न हो गयीं। उन्होंने कश्यप से अपनी–अपनी इच्छानुसार वर माँगे। कद्रू ने समान तेजस्वी सहस्त्र पुणों को माँगा तथा विनता ने कद्रू के पुत्रों की अपेक्षा श्रेष्ठतर दो पुत्रों की याचना की। महर्षि ने उन्हें अभीष्ट वर प्रदान किए। महर्षि के प्रसाद से वे गर्भवती हुईं। उनसे यह कहकर कि तुम अपने गर्भ की रक्षा करना, कश्यप वन में घोर तप एवं साधना की चिरंतन भावना से अभिभूत हो तपस्या करने चले गये। समय आने पर कद्रू ने एक हजार और विनता ने मात्र दो अण्डे दिये।[16] दासियों ने उन अण्डों को पात्रों में रख दिया। वे अण्डे उन्हीं पात्रों में पड़े रहे। पाँच सौ वर्ष बीत जाने पर कद्रू के अण्डों से एक हजार पुत्र बाहर निकल आयें।[17] वे सब सर्प के रूप में थे। परन्तु विनता के शिशु अण्डों से नहीं निकले। तब विनता ने स्वयं ही एक अण्डा फोड़ लिया। विनता ने देखा कि उसमें एक बालक है, जिसके शरीर का केवल ऊपरी भाग पूर्ण विकसित एवं पुष्ट है। उस शिशु ने अपनी माता विनता को शाप देते हुए कहा–तुमने मुझे परिपक्व व पुष्ट हुए बिना कद्रू से ईर्ष्या के कारण अण्ड से बाहर निकाल लिया है। अतः तुम पाँच सौ वर्षों तक कद्रू की दासी बनकर रहोगी; किन्तु द्वितीय अण्ड में स्थित तुम्हारा पुत्र तुम्हें दासता से मुक्त करेगा। इसके परिपक्व होने के लिए तुम्हें अभी पाँच सौ वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इस प्रकार विनता को शाप देकर वह बालक जिसका नाम अरुण था, पूर्व दिशा में उड़ गया और सूर्य के सारथि के रूप कार्य करने लगा।

कुछ काल के उपरान्त एक दिन कद्रू और विनता दोनों एक साथ भ्रमण करने के लिए निकलीं। उस समय उन्होंने समुद्रमंथन से निकले उच्चैःश्रवा अश्व को निकट से देखा। उसे देखकर कद्रू ने विनता से कहा– भद्रे! बताओ यह अश्व किस रंग का है? विनता ने उस अश्व का वर्ण श्वेत बतलाया। कद्रू ने कहा– मैं इसकी पूँछ को कृष्ण मानती हूँ। फिर उनके बीच में प्रण हुआ कि हममें जो हार जाएगा वह जीतने वाली की

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

दासी बनकर रहेगी। तब निश्चय यह हुआ कि अगले दिन वे पुनः अश्व को देखने आएँगी और तभी अश्व के वर्ण का निर्णय करेंगी।

कद्रू कुटिल ह्रदय थी। वह छल से काम लेना चाहती थी। उसने घर जाकर अपने सहस्त्र पुत्रों को आज्ञा दी कि तुम लोग शीघ्र जाओ और उच्चैःश्रवा की पूँछ में काले रंग के बाल बनकर संलग्न हो जाओ। माता की कुटिलता पहचानकर कुछ सर्पों ने आज्ञा मानने से इनकार कर दिया। तब कुपित होकर कद्रू ने उन्हें शाप दिया कि तुम लोग राजा जनमेजय की यज्ञाग्नि में जलकर भस्म हो जाओगे।[18]

उसके कर्कोटक नामक पुत्र को जब यह पता चला कि आज्ञा न मानने पर उसकी माता ने भाइयों को शाप दिया है, तो वह माता का आदेश मानने को प्रस्तुत हो गया। उसने माता के पास जाकर कहा, माँ! तुम धैर्य रखो, मैं काले रंग का केश बनकर उच्चैःश्रवा की पूँछ में लिपट जाऊँगा। कर्कोटक की बात से कद्रू प्रसन्न हुई। दूसरे दिन ज्यों हि सूर्योदय हुआ त्यों हि कद्रू और विनता उच्चैःश्रवा को निकट से देखने के उद्देश्य से गयीं।

तदनन्तर अन्य सर्पों ने भी परस्पर विमर्श के उपरान्त कर्कोटक के समान माता की आज्ञा का पालन करना उचित समझा। उन्होंने सोचा–हमारे कार्य से प्रसन्न होकर माता अपने शाप को लौटा लेंगी। वे माता के वहाँ पहुँचने से पूर्व ही उच्चैःश्रवा की पूँछ में श्याम केश बनकर संलग्न हो गए। कद्रू और विनता ने समीप जाकर उच्चैःश्रवा की पूँछ देखी। कद्रू प्रण जीत गई। उसने विनता को अपनी दासी बना लिया।

उचित समय आने पर विनता के द्वितीय पुत्र का जन्म हुआ। वह आकाशीचारी पक्षी के रूप में प्रादुर्भूत हुआ था। इसलिए उसका नाम गरुड़ पड़ा। गरुड़ भी अपनी माता विनता के साथ कद्रू के दासता को स्वीकार करने लगा।

ध्यातव्य है कि एक दिन कद्रू ने पुत्र के साथ बैठी हुई विनता से कहा समुद्र के भीतर निर्जन प्रदेश में नागों का रमणीय निवास स्थान है। तुम मुझे वहाँ ले चलो। तब कद्रू विनता की पीठ पर और उसके पुत्र गरुड़ की पीठ पर बैठकर उस प्रदेश में पहुँचे। वह द्वीप विचित्र फलों और फूलों से भरी हुई वनश्रेणियों से युक्त था। उसमें बहुत से मनोहर भवन एवं सरोवर भी थे। वहाँ पहुँचकर सबने सुखपूर्वक विहार किया। तब कद्रू के पुत्रों ने गरुड़ से कहा तुम आकाश में उड़ते समय बहुत से द्वीप देखा करते हो, अतः हमें किसी रमणीयतर द्वीप को ले चलो। यह सुनकर गरुड़ ने अपनी माता से पूछा, माँ! क्या कारण है कि मुझे और तुम्हें इनकी आज्ञा माननी पड़ती है। विनता ने उसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तब गरुड़ ने सर्पों से पूछा, मैं तुम्हें क्या लाकर दे दूँ, जिससे मुझे

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

और मेरी माता को तुम्हारी दासता से मुक्ति मिल जाए। सर्पों ने कहा गरुड़! तुम हमें अमृत लाकर दो तो तुम्हें दास्यभाव से मुक्ति मिल जाएगी। गरुड़ माँ की आज्ञा लेकर अमृत की खोज में चल दिया।

ध्यानार्ह है कि जब वह देवताओं से अमृत की याचना करने जा रहा था, तब इसकी सूचना बृहस्पति ने इन्द्र को दी। इन्द्र ने देवताओं को अमृत घट की सुरक्षा करने का आदेश दिया और स्वयं भी वज्र लेकर सुरक्षा में तत्पर हो गया। फिर भी गरुड़ अमृत के पास पहुँच गया। वह जैसे ही अमृत लेने का प्रयत्न करने लगा वैसे ही देवताओं ने उस पर आक्रमण कर दिया। वे विविध अस्त्रों से गरुड़ पर प्रहार करने लगे। किन्तु गरुड़ ने उनके आक्रमण को विफल कर अमृत कलश पर अपना अधिकार कर लिया। जब अमृत कलश देवताओं के हाथ से निकल गया, तब इन्द्र ने गरुड़ से मैत्री स्थापित करने का अनुरोध किया और कहा, यदि तुम्हें अमृत की आवश्यकता नहीं है, तो उसको हमें लौटा दो। तुम जिनके लिए यह अमृत ले जा रहे हो वे अमृत पान कर देवों को पीड़ित करेंगे। इन्द्र की बात सुनकर गरुड़ ने कहा, मैं किसी को इसका पान नहीं करने दूँगा। मैं स्वयं जहाँ इसे रख दूँगा वहाँ से तुम इसे उठाकर ले आना। इस बात को सुनकर इन्द्र प्रसन्न हो गए। उन्होंने गरुड़ को वर माँगने को कहा। गरुड़ ने भी इन्द्र की प्रसन्नता के लिए उनसे वर माँगा कि महाबली सर्प मेरे भोजन की सामग्री हो जाएँ।[19] इस प्रकार देवों के साथ मैत्री स्थापित कर गरुड़ अपनी माता के पास आ गया।

गरुड़ ने उनके समीप आते ही सर्पों से कहा, मैं तुम्हारे कथनानुसार अमृत ले आया हूँ और इसे कुशों पर रख देता हूँ। तुम लोग स्नानादि करके अमृतपान करो। अब तुम्हारे वचन के अनुसार मैं और मेरी माता दोनों तुम्हारी दासता से मुक्त हो गए। सर्पों ने तथास्तु कह दिया। फिर सर्प स्नान के लिए जल में प्रविष्ट हुए कि इन्द्र उस अमृतकलश को उठा ले गये। सर्पों ने स्नान करने के बाद देखा कि कुशों पर रखा अमृतकलश नहीं है। फिर सोचा जहाँ वह रखा था, वहाँ पर कुछ अंश तो होगा ही। यह विचार कर सर्प उन कुशों को चाटने लगे। ऐसा करने से उनकी जीभ फट गई।[20] तब से सर्प द्विजिहवा कहलाते हैं। इस प्रकार गरुड़ और विनता कद्रू की दासता से मुक्त हुए।

डॉ0 रघुवीर प्रसाद गोस्वामी ने महाभारत के उपाख्यान का बड़ा ही सुन्दर वर्णन अपनी पुस्तक में किया है जो एक रूपक के रूप में ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। भविष्यपुराण और ब्रह्माण्डपुराण सहित अनेक पुराणों में यह कथा इसी प्रकार है। यद्यपि आज भी यह लोकविश्वास के रूप में गृहीत है। साहित्य में चाहे वह संस्कृत का

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

हो या आधुनिक, इस कथा का प्रभाव पड़ा है। इसी आधार पर गरुड़ का नाम वैनतेय और सर्पों का नाम काद्रवेय तथा द्विजिहव आज भी प्रतिष्ठित है। संस्कृत का नागानंद नाटक इसी मान्यता पर रचा गया है कि गरुड़ सर्पभक्षी है।

प्रसंगात् उल्लेख्य है कि गरुड़ विष्णु के वाहन हैं। कश्यप स्त्री विनता उनकी माँ है। दूसरी कथा के अनुसार बालाखिल्य ऋषियों के तप से पक्षिराज गरुड़ की उत्पत्ति हुई। प्रश्न आता है कि पुराण के रचनाकारों ने जिस गरुड़ का विस्तार के साथ उल्लेख किया है उनका वास्तविक स्वरूप क्या है? गरुड़ की कथा के पीछे कौन–सा तत्व छिपा हुआ है?

सृष्टि एवं विसृष्टि का कौन–सा रहस्य गरुड़ की मनोहर कथा द्वारा व्यक्त किया गया है? गरुड़ विष्णु के वाहन क्यों हैं? उनकी माँ विनता क्यों है? उन्हें खगेन्द्र क्यों कहा जाता है? बालखिल्य कौन हैं तथा कैसे उनके तप से गरुड़ का जन्म हुआ ? इसमें वैज्ञानिक एवं दार्शनिक रहस्य क्या है ? इस चुनौती को स्वीकार किये बिना गरुड़ हममें ज्ञान–गगन के खगेन्द्र नहीं बन सकते।

पुराण के प्रणयन कर्ताओं ने इसके लिए विष्णु को गरुड़ का वाहन दिया है। गरुड़ की प्रशंसा उनके डैनों की बलवती शक्ति में है। उनकी स्तुति में ही उन्हें गरुत्मा सुपर्ण कहा जाता है। गरुड़ के लिए दूरी है ही नहीं। उनकी गति मन के संकल्प से है। गतिमान पदार्थों में मन सर्वातिशायी है। गरुड़ मन के समान ही दूरंगम है। वे अपनी इच्छा मात्र से सर्वत्र पहुँचते हैं। यही उनकी गति का रहस्य है। ऐसे वाहन को प्राप्त कर विष्णु सचमुच कृतकृत्य हो गये। उनका विष्णुत्व अक्षुण्ण है। धन्य है भारत की रत्नगर्भा वसुन्धरा पर उत्पन्न मनीषियों की बुद्धि को जिन्होंने कल्पना सागर का विमंथन करके अचिंत्य एवं अलक्ष्य भावों को प्रकाशित कर इन आख्यान रत्नों को जन्म दिया। अस्तु स्पष्ट है कि अनुभवातीत गति के प्रतिनिधि गरुड़ हैं।

प्रसंगात् यहाँ यह भी उल्लेख्य है कि वस्तुतः विष्णु के वाहन की मनसा संकल्पेन गति है। तात्पर्य यह है कि विष्णु का कार्य क्षेत्र सर्वत्र है। यदि मन की एकाग्रता से विष्णु के साथ तादात्म्य प्राप्त कर लिया जाय तो उसी क्षण उसी स्थान में उनके वाहन का और उनका अनुभव हो जाता है। विष्णु के वाहन की गति का स्थान–निबन्धन हर एक का स्वयं आत्मा है।[21]

'रवे गच्छतीति इति खगः' अर्थात् जो आकाश में विचरण करें वह खग है। पक्षी जिस कारण खग कहलाते है, सूर्य भी उसी कारण खग है। गरुड़ भी खगेन्द्र है। संस्कृत कोश ग्रन्थों में खग का अर्थ सूर्य ही दिया गया है। सूर्य को सत्यमेव खगेन्द्र और पक्षिराट

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

की संज्ञा से समलंकृत किया गया है। बालखिल्यों ने अपने तप से जिस गरुड़ को व्युत्पना किया, उसे कहा कि वह पक्षियों का राजा हो। कोशों से गरुड़ की संज्ञा तार्क्ष्य है। वेदों में तार्क्ष्य का विशेषण अरिष्टनेमि पद दिया गया है। अरिष्टनेमि का अर्थ सूर्य के लिए ही उत्पन्न हो सकता है। सूर्य रथ का नेमि या धुरी कभी क्षीण नहीं होती अर्थात् घिसती नहीं है। अरिष्टनेमि तार्क्ष्य जो गरुड़ का नाम है, वास्तव में सूर्य ही हैं।[22]

यही कश्यप गरुड़ और अरुण के भी पिता हैं कश्यप–स्त्री अदिति से आदित्य का जन्म हुआ। अदिति शक्ति (इनर्जी) को कहा जाता है। सूर्य शक्ति का स्रोत माना गया तब उनकी माता का नाम अदिति हुआ।

कश्यप–पत्नी विनता हैं जिनके पुत्र गरुड़ हैं। विनता प्रातःकालीन सूर्य कि तिग्म स्थिति (ऑबलिक पोजीसन) की संज्ञा है। जो विशेष नत या झुकी हुयी हो उसे विनता कहते हैं। मध्याह्न सूर्य की अपेक्षा पूर्वाह्न के सूर्य की स्थिति तिग्म है। विनता के उत्संग में बैठे हुए वैनतेय सूर्य के अश्व श्वेत वर्ण के हैं यही विनता ने कहा था, पर कद्रू (रात्रि, शबलता, पिंगलता, जिसमें अन्धकार मिला हो कडारता) ने काला कहा, और कद्रू के पुत्र काद्रवेय सर्पों ने सूर्य के अश्वों के अंग में लिपट कर उन्हें काला प्रमाणित कर दिया। रात्रि के आगमन की यह कल्पना की गयी थी। सूर्य के घोड़ों कृष्ण सर्प ढक करके प्रकाश को तिरोहित कर देते हैं जिससे अन्धकार व्याप्त हो जाता है। रात्रि भर वैनतेय सूर्य की जननी कद्रू के बन्धन में रहती है। तदनन्तर गरुड़ सर्पों का भक्षण कर फिर सूर्य को प्रकाशित कर देते हैं। अन्धकार और प्रकाश के द्वन्द का वर्णन कद्रू और विनता की मनोरम कथा है।[23]

कला में गरुड़ के शिल्पांकन की परम्परा चल पड़ी। उनके अंग, प्रत्यंग, वस्त्राभूषण एवं प्रतिमाशास्त्रीय विधानों का वर्णन वैष्णव आगमों में विस्तार से उल्लिखित है। निश्चय ही वैनतेय सूर्य और कद्रू सुत अन्धकार की वे धाराएं हैं जिनका विनाश कर भगवान भुवन भास्कर लोक में आलोक फैलाते हैं। कद्रू निशा है और विनता उषा।

सन्दर्भ

1. महाभारत, आदिपर्व, 20. 8
2. 'मनुस्तु गरुड़ो ज्ञेयः सर्वभूत शरीरगम्' –विष्णु धर्मोत्तर पुराण, 47. 7
3. मैक्डानल; वै0 मा0, पृष्ठ 152, हॉपकिन्स; रिलीजन्स् ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 45
4. ऋग्वेद 5/45/9
5. नवं नु स्तोममग्नये दिवः श्येनाय जीजनम्। –ऋग्वेद 7/15/4
6. 'दिव्यं सुपर्ण वायसं बृहन्तम् अपांगर्भम्।' –1/164/52

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

7. वाजसनेयी संहिता 17/72
8. 'श्येनो भूत्वा परापत' –वाजसनेयी संहिता 4/34
9. वाजसनेयी संहिता, 12. 4
10. शतपथ ब्राह्मण 6/7/2/5–6
11. गारुड़ोपनिषद् श्लोक 5, 6, 7, 8
12. 'देवासुरविमर्देषु बहुशो दृढ़विक्रमम्' –मत्स्य 173/42
13. विष्णु पुराण 5/30/59, 64
14. मत्स्य पुराण 173/40–41, 43–45
15. त्रिपाठी गयाचरण, वैदिक देवता, उद्भव एवं विकास प्रथम खण्ड, पृष्ठ–404
16. कालेन महता कद्रूरण्डानां दशतीर्दश। जनयाम विपेन्द्र द्वे चाण्डे विनता तदा।।
    –आदिपर्व, 16.13
17. सोपस्वेदुषु भाण्डेषु पंचवर्ष शतानि च। ततः पंचशते काले कद्रूपुत्रा विनिः सृताः।।
    –आदिपर्व, 16.15
18. आदिपर्व–20/8
19. आदिपर्व, 34/13
20. तत्रैव, 34. 23
21. अग्रवाल वासुदेव शरण, भारतीय धर्म मीमांसा, पृष्ठ 61–64
22. कश्यप प्रजापति की संज्ञा तार्क्ष्य है, वह सूर्य और गरुड़ के भी पिता हैं। 'पश्यतीति कश्यपः सूर्यः।' पिता–पुत्र सम्बन्ध अभेद होता है इसलिए कश्यप ही सूर्य हैं।
    –तत्रैव, पृष्ठ 68
23. तत्रैव, पृष्ठ 69–70

WRITERS VIEW
An Interdisciplinary, bilingual, bi-annual, a peer review or refereed, Indexed & Open Accesses International Research Journal
Vol. 5 No. 2 VIJAYADASHMI, Vikram Samvat 2077 Year 2(
ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

दादा भाई नौरोजी का आर्थिक चिंतन (धन निष्कासन के विशेष संदर्भ में)

डॉ. अभय कुमार सिंह

शोध सारांश

भारतीय राष्ट्रवादी विद्वानों ने आर्थिक तंत्र की समग्र प्रक्रिया के आलोक में धन–निष्कासन पर प्रकाश डालते हुए इस तथ्य को स्पष्ट किया है कि पराधीन भारत के अल्प विकास, आर्थिक, औद्योगिक एवं सांस्कृतिक पिछड़ेपन के लिए ब्रिटिश सरकार की केवल और केवल शोषणकारी आर्थिक नीतियां ही प्रत्यक्ष तौर पर जिम्मेदार हैं। इतना ही नहीं, उनका यह भी मानना है कि भारत की गरीबी एवं पिछड़ेपन में न तो कोई दैवीय प्रकोप है और न ही ऐतिहासिक विरासत। वस्तुः जिस सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक प्रक्रिया के परिणामस्वरूप ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति हुई वह वहां न केवल सांस्कृतिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया, अपितु उसी प्रक्रिया ने भारत में अल्प विकास, दरिद्रता, अकाल, व्यापार एवं उद्योगों के विनाश आदि को बढ़ावा दिया। ऐसे में हमारे दादा भाई नौरोजी निश्च्यतः प्रथम राष्ट्रवादी नेता थे जिन्होंने धन के निष्कासन की प्रक्रिया को लक्षित करते हुए इस बात पर जोर दिया कि किस तरह से ब्रिटिश हुकूमत राजस्व, उद्योग एवं व्यापार आदि स्रोत के माध्यम से भारतीय धन का निष्कासन कर रही है। परिणामस्वरूप जिसके लिए हमें अधिक मात्रा में ब्याज देना पड़ता है। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार केवल भारतीय धन का ही निष्कासन नहीं करती है, अपितु नैतिकता का भी निष्कासन करती है क्योंकि अंततः यह पूरे भारतीय लोगों को उनके अधिकारों से ही वंचित रखती है।

बीज शब्द

साम्राज्यवाद, धन निष्कासन, पूंजी संचयन, स्वाधीन, औपनिवेशिक ढांचा, स्वदेशी, अवमूल्यन, मुक्त व्यापार, वैश्विकरण

पूर्व शोध छात्र, इतिहास विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

शोध विस्तार

डॉ. भरत झुनझुनवाला अनुसार ''राष्ट्रीयता अपने आधुनिक अर्थ में आधुनिक काल की देन है। राष्ट्रीयता की भावना में राष्ट्रीय चेतना के साथ अपने देश की सामाजिक आर्थिक चेतना भी निहित होती है। इस आलोक में दादा भाई नौरोजी की आर्थिक चेतना राष्ट्र की वर्तमान समस्याओं के साथ–साथ अतीत की आर्थिक नीतियों से स्वभावतः जुड़ जाती है।''[1] पराधीन राष्ट्र की अर्थव्यवस्था औपनिवेशिक ढांचे के अंतर्गत नियमित एवं संचालित होती है, लेकिन स्वाधीन राष्ट्र उसका पुनः परीक्षण भी करता है। चूंकि, पुनः परीक्षण की प्रक्रिया में वर्तमान के मूल्य और दृष्टिकोण क्रियाशील हो उठते हैं, यही कारण है कि राष्ट्रीयता अपनी प्रकृति में केवल विचार ही नहीं है, अपितु यह संवेदना एवं आचरण भी है। उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय उत्पादन का वह भाग जो आम जनता के उपभोग के लिये उपलब्ध नहीं था और औपनिवेशिक तथा साम्राज्यवादी नीतियों के निहितार्थ राजनीतिक कारणों की वजह से जिसका प्रवाह इंग्लैंड की ओर हो रहा था, जिसके बदले में भारत को कुछ नहीं प्राप्त होता था, उसे आर्थिक विश्लेषकों ने आर्थिक निकास या धन निष्कासन (Drain of Wealth) की संज्ञा प्रदान की है। दरअसल धन की निकासी की अवधारणा वाणिज्यवादी सोच के क्रम में विकसित हुई है।

प्रो. आर. डी. धीमान के अनुसार ''धन–निष्कासन के सिद्धान्त पर तत्युगीन अनेक आर्थिक इतिहासकारों ने अपने विचार प्रकट किए हैं। इस परिप्रेक्ष्य में दादा भाई नौरोजी ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'पावर्टी ऐन्ड अनब्रिटिश रूल इन इन्डिया' में सर्वप्रथम आर्थिक निकास की अवधारणा प्रस्तुत की। उनकी दृष्टि में एक अर्थव्यवस्था के लिए धन–निष्कासन सभी बुराइयों की बुराई है। उन्होंने भारतीय निर्धनता के मूल कारणों में धन–निष्कासन को ही प्रमुख माना है।''[2] इस कड़ी में उल्लेखनीय रमेश दत्ता, महादेव गोविंद रानाडे तथा गोपाल कृष्ण गोखले जैसे राष्ट्रवादी आर्थिक विचारकों ने भी धन निष्कासन की प्रक्रिया एवं प्रभाव का तार्किक विवेचन किया है। उनका तार्किक निष्कर्ष है कि ब्रिटिश सरकार भारत में सिंचाई आदि आधारभूत योजनाओं पर खर्च करने की बजाय एक ऐसे मद में व्यय कर रही है जो प्रत्यक्षतः से साम्राज्यवादी हित एवं नीतियों से जुड़ा हुआ है।

प्रस्तुति एवं विश्लेषण

धन–निष्कासन के आलोक में दो विचारधाराएं उल्लेखनीय हैं– पहला, साम्राज्यदवादी और दूसरा, राष्ट्रवादी। साम्राज्यवादी व राष्ट्रवादी इतिहासकारों की दृष्टि अलग–अलग है। उदाहरण के तौर पर साम्राज्यावादी इतिहासकार जॉन स्ट्रेची आदि जैसे

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

साम्राज्यवादी इतिहासकारों का मानना है कि ब्रिटेन ने भारत का धन नहीं लूटा है, अपितु भारत में उत्तम प्रशासन, सुरक्षा एवं बुनियादी सुविधाओं का विकास किया है तथा उसके बदले में पारिश्रमिक के तौर पर धन प्राप्त किया है। इतना ही नहीं, मोरिस डी. मोरिस का विचार है कि भारत में ब्रिटिश सरकार की भूमिका एक सजग चौकीदार की तरह है जिसने भारत में विकास की संभावनाओं को एक छत्रछाया प्रदान किया है। परंतु, राष्ट्रवादी आर्थिक चिंतकों ने धन–निष्कासन की प्रक्रिया एवं प्रभाव का विवेचन प्रस्तुत करते हुए इस तथ्य को प्रकाशित किया है कि भारत केआर्थिक सांस्कृतिक पिछड़ेपन एवं अल्प विकास के लिए ब्रिटिश सरकार की शोषणकारी आर्थिक नीतियां ही प्रत्यक्ष तौर पर जिम्मेदार हैं। उन्होंने यह विचार प्रकट किया है कि भारत की गरीबी एवं पिछड़ेपन के मूल में न तो कोई दैवी प्रकोप है, और न ही कोई ऐतिहासिक विरासत। डॉ. पुष्पराज लिखते हैं कि ''क्योंकि, जिस सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक प्रक्रिया के तहत ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति का जन्म हुआ तथा वहां के सांस्कृतिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया, उसी प्रक्रिया ने भारत को अल्प विकास, दरिद्रता, अकाल, व्यापार एवं उद्योगों के विनाश आदि को जन्म दिया। ऐसे में दादा भाई नौरोजी प्रथम राष्ट्रवादी नेता थे जिन्होंने धन–निष्कासन की प्रक्रिया को चिन्हित करते हुए बताया कि किस तरह से ब्रिटिश सरकार राजस्व, उद्योग, व्यापार, आदि स्रोत के माध्यम से भारतीय धन का निष्कासन करती है। उनके अनुसार ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार आर्थिक नीतियों का सबसे घृणित पक्ष यह है कि यहां का धन निष्कासित होकर ब्रिटेन जाता है और वही धन हमें ऋण के रूप में उपलब्ध किया जाता रहा है जिसके लिए हमें अधिक मात्रा में ब्याज देना पड़ता है।''[3]

वास्तव में ब्रिटिश सरकार केवल भारतीय धन का ही निष्कासन नहीं करती है, अपितु नैतिकता का भी निष्कासन करती है। साथ ही साथ यह भारतीयों को उनके अधिकारों से भी वंचित रखती है।इस आलोक में सुलिवान का कथन ब्रिटिश सरकार की साम्राज्यवादी मनोवृति का परिचायक है–' 'ब्रिटिश सरकार की व्यवस्था स्पंज है जो गंगा के पानी को सोखता है और टेम्सु नदी में निचोड़ देता है।''[4] दादा भाई नौरोजी के अनुसार निश्चयतः ब्रिटिश सरकार ने भारतीय अर्थव्यस्था का बहुत ही क्रमिक ढंग से शोषण किया है। इसके लिए आधारभूत संरचनाओं के विकास की आड़ में ब्रिटिश सरकार की साम्राज्यवादी हितों के निहितार्थ किए गए व्ययों का विश्लेषण काफी रोचक है। ''भारत में धन–निष्कासन के प्रमुख तत्वों का विवेचन करते हुए उन्होंने कतिपय महत्पूर्ण पहलुओं का उल्लेख किया है।''[5] यथाः–

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

- अंग्रेज प्रशासनिक एवं सैनिक अधिकारियों के वेतन एवं भत्ते
- भारत द्वारा विदेशों से लिये गये ऋणों के ब्याज
- नागरिक एवं सैन्य विभाग के लिये ब्रिटेन के भंडारों से खरीदी गयी वस्तुएं
- नौवहन कंपनियों को की गयी अदायगी तथा विदेशी बैंकों तथा बीमा लाभांश।

ब्रिटेन की साम्राज्यवादी नीतियों के परिणामस्वारूप भारत में धन–निष्कासन का प्रवाह निरंतर बना रहा। और, भारतीयधन का निकलकर इंग्लैण्ड जाने से जहां एक ओर भारत में पूंजी का निर्माण एवं संग्रहण नहीं हो सका, वहीं दूसरी ओर इसी (निष्कासित) धन से इंग्लैण्ड में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया को तीव्र गति मिली।

उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश अर्थव्यवस्था को इस अर्जित (निष्काससित) धन से जो लाभांश प्राप्त होता था, उसे पुनः पूंजी के रूप में भारत में लगा दिया जाता था और इस प्रकार भारत का शोषण निरंतर बढ़ता रहा। कहना गलत न होगा कि साम्राज्यवादी नीतियों के तले भारतीय धन के निष्कासन से भारत में रोजगार तथा आय की संभावनाओं पर अत्यधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। भारतीय धन का यह अपार निष्कासन भारत को अन्दर–ही–अन्दर आर्थिक तौर पर कमजोर बनाता रहा। ''वैसे तो ब्रिटिश ईस्ट–इंडिया कंपनी तथा ब्रिटिश क्राउन द्वारा भारत से निष्कासित धन की मात्रा का सही–सही अनुमान लगाना बहुत कठिन है। इस संदर्भ में अलग–अलग विद्वानों ने अलग–अलग आंकड़े दिये हैं।''[6] कतिपय आंकड़ें उल्लेखनीय हैंः–

- बंगाल प्रान्त में प्राप्त होने वाले राजस्व एवं व्यय के विवरण के अनुसार कम्पनी ने प्रथम 6 वर्षों (1765 ई.से 1771 ई.) के बीच 1,30,66,991 पौंड शुद्ध राजस्व अर्जित किया जिसमें से 90,27,609 पौण्ड खर्च कर दिया तथा शेष राशि 40,39,152 पौंड का सामान इंगलैंड भेज दिया गया।
- विलियम डिग्बी के अनुसार 1757 ई.से 1815 ई. तक भारत से 50 से 100 करोड़ पौंड की राशि इंग्लैंड भेजी गयी।
- वर्ष 1828 ई. में मार्टिन मोंटेगुमरी ने एक अनुमान लगाया कि प्रतिवर्ष लगभग 3 करोड़ पौण्ड भारत से बाहर जाता था।
- जार्ज विन्सेन्ट द्वारा 1859 ई. में लगाये गये अनुमान के मुताबिक 1834 ई. से 1851 ई. तक लगभग 42 लाख पौंड प्रतिवर्ष भारत से बाहर गया।

दादा भाई नौरोजी के अनुसार ब्रिटेन की समग्र औपनिवेशिक नीतियों में भारतीय धन निष्कासन की प्रक्रिया बहुआयामी स्वेरूप में निरंतर बनी रही। दरअसल धन–निष्कासन

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

के वाणिज्यवादी पहलू के अतंर्गत धन निष्कासन उस स्थिति को कहते हैं जब प्रतिकूल व्यापार संतुलन के कारण किसी देश से सोने, चांदी आदि जैसी कीमती धातुएं देश से बाहर चली जाएं। हमारे समक्ष ऐसे अनेक साक्ष्य उपलब्ध हैं कि प्लासी के युद्ध से 50 वर्ष पहले तक ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा भारतीय वस्तुओं के क्रय हेतु लगभग दो करोड़ रूपये की कीमती धातु भारत लाई गई थी। उस समय ब्रिटिश सरकार द्वारा ईस्ट इंडिया कंपनी के इस कदम की तीव्र आलोचना की गयी थी। हालांकि, कर्नाटक, प्लासी और बक्सर के युद्धों के उपरांत स्थिति में अचानक नाटकीय परिवर्तन आया। गोया, बंगाल दीवानी ब्रिटिश कंपनी को प्राप्त होने के साथ–साथ कंपनी ने अपने निवेश की समस्या को भी आसानी से सुलझा लिया। और, अब आंतरिक व्यापार से प्राप्त राशि, बंगाल की लूट से प्राप्त राशि तथा बंगाल की दीवानी से प्राप्त राशि के योग के एक भाग का निवेश भारतीय वस्तुओं के क्रय हेतु होने लगा। इस प्रकार औपनिवेशिक भारत ने ब्रिटेन को जो निर्यात किया उसके बदले भारत को कोई आर्थिक, भौतिक अथवा वित्तीय लाभ प्राप्त नहीं हुआ। परंतु, बंगाल की दीवानी से प्राप्त राजस्व का एक भाग वस्तुओं के रूप में भारत से ब्रिटेन निरंतर हस्तांतरित होता रहा। इसे ही ब्रिटेन के पक्ष में भारत से धन का हस्तांतरण कहा जा सकता है। डॉ. कुलदीप अत्री लिखते हैं कि ''ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में यह प्रक्रिया वर्ष 1813 ई. तक चलती रही, लेकिन वर्ष 1813 ई. चार्टर अधिनियम के अनुसार कंपनी का राजस्व खाता तथा कंपनी का व्यापारिक खाता अलग–अलग हो गया। वर्ष 1813 ई. के चार्टर अधिनियम के तहत भारत का मार्ग ब्रिटिश वस्तुओं के लिए खोल दिया गया तथा भारत में कंपनी का व्यापारिक एकाधिकार समाप्त कर दिया गया। आर्थिक विश्लेषक इसे एक महत्वपूर्ण परिवर्तन के रूप में देखते हैं। क्योंकि, स्थिति उस समय और भी चिंताजनक रही, जब ब्रिटेन तथा यूरोप में भी कंपनी के द्वारा भारत से निर्यात किए जाने वाले तैयार माल को हतोत्साहित किया जाने लगा। परिणामस्वरूप अब कंपनी के समक्ष अपने शेयर धारकों को देने के लिए राशि की समस्या उत्पन्न हो गई।''[7]

प्रो. हर्ष देव लिखते हैं कि ''आरम्भ में तो कंपनी ने नील और कपास का निर्यात कर इस समस्या को सुलझाने का भरसक प्रयास किया था। परंतु, भारतीय नील और कपास कैरिबियाई देशों के उत्पाद तथा सस्ते श्रम के कारण कम लागत में तैयार की गई अमेरिकी उत्पादों के सामने नहीं टिक सके।[8] अस्तुर, निर्यात एजेसियों को एक तरह से हानि वहन करना पड़ा। और, यही कारण रहा कि कंपनी ने विकल्प के तौर पर भारत में अफीम के उत्पादन पर काफी बल दिया तथा अत्यधिक मात्रा में अफीम चीन को निर्यात किया जाने लगा। दरअसल अफीम का निर्यात चीनी लोगों के स्वास्थय के लिए

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

जितना घातक था, उतना ही कंपनी के व्यावसायिक गति एवं विकास के लिए आवश्यक था। उल्लेखनीय है कि अफीम व्यापार का विरोध किये जाने पर भी ब्रिटिश कंपनी ने चीन पर बलात् यह घातक जहर थोप दिया गया था। इस प्रकार ब्रिटेन भारत से चीन को अफीम निर्यात करता रहा और बदले में रेशम और चाय की उगाही करता और मुनाफा कमाता रहा। इस मायने में भारत से निर्यात तो जारी रहा, परंतु बदले में उस अनुपात में आयात नहीं हो पाया। अपने परिवर्तित स्वरूप के साथ 1858 ई. के पश्चात् भी यह समस्या बनी रही।

ध्यातव्य है कि वर्ष 1858 ई. में भारत का पूरा प्रशासन ब्रिटिश सरकार ने प्रत्यक्षतः अपने हाथों में ले लिया। ''भारत शासन अधिनियम, 1858 के प्रावधानों के अनुसार भारत के प्रशासन के लिए भारत सचिव के पद का सृजन किया गया तथा भारत सचिव एवं उसकी परिषद का खर्च भारतीय खाते में डाल दिया गया। और तो और 1857 ई. के सैन्य विद्रोह को दबाने में जो राशि खर्च हुई थी, उसे भी भारतीय खाते में डाल दिया गया। इससे भी अधिक रोचक एवं ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि भारतीय सरकार एक निश्चित रकम प्रतिवर्ष गृह व्यय के रूप में ब्रिटेन भेजती थी। व्यय की इस राशि में कई मदें शामिल थीं यथा–रेलवे पर प्रत्याभूत ब्याज, सरकारी कर्ज पर ब्याज, भारत के लिए ब्रिटेन में की जाने वाली सैनिक सामग्रियों की खरीद, भारत से सेवानिवृत्त ब्रिटिश अधिकारियों के पेंशन इत्यादि। इस तरह गृह व्यय की राशि की गणना धन–निष्कासन के रूप में की जाती थी।''[9]

डॉ. सुमीत चटर्जी के अनुसार ''आलोच्य संदर्भ में दादा भाई नौरोजी यह स्पष्ट करते हैं कि 19वीं सदी में धन के बहिर्गमन में केवल गृह–व्यय ही शामिल नहीं था, अपितु इसमें कुछ अन्य मदें भी जोड़ी जाती थीं। उदाहरण के लिए भारत में कार्यरत ब्रिटिश अधिकारियों के वेतन का वह भाग जो भारत से बचाकर ब्रिटेन भेजा जाता था तथा निजी ब्रिटिश व्यापारियों का वह मुनाफा जो भारत से ब्रिटेन भेजा जाता था। इस क्रम में जब सन 1870 के दशक में ब्रिटिश पौण्ड की तुलना में रूपए का अवमूलयन हुआ तो इसके साथ ही निष्कासित किए गए धन की वास्तविक राशि में पहले की अपेक्षा और भी अधिक वृद्धि हो गई। विवेचनार्थ, दादाभाई नौरोजी ने उन छः मूल कारणों का उल्लेकख किया जो धन–निष्कासन सिद्धांत के कारण बने''[10] यथा :–

- पहला, भारत में विदेशी नियम और प्रशासन।
- दूसरा, आर्थिक विकास के लिए आवश्यक धन और श्रम विदेशियों द्वारा लाया गया था। लेकिन तब भारत ने विदेशियों पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया था।

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

- तीसरा, भारत द्वारा ब्रिटेन के सभी नागरिकों के प्रशासन और सेना के खर्च का भुगतान किया गया था।
- चौथा, भारत अंदर और बाहर, दोनों क्षेत्रों के निर्माण का भार उठा रहा था।
- पांचवां, भारत द्वारा देश के मुक्त व्यापार को खोलने में अधिक लाभ हुआ।
- छठा, ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में प्रमुख धन लगाने वाले विदेशी थे। वे भारत से जो भी पैसा कमाते थे, वह भारत में कभी भी कुछ भी खरीदने के लिए निवेश नहीं करते थे। फिर उन्होंने भारत को उस पैसे के साथ छोड़ दिया था।

विवेचनार्थ, दादा भाई नौरोजी भारतीय धन–निष्कासन को ऐतिहासिक आर्थिक परिप्रेक्ष्य में समझने के साथ–साथ भारतीय व्यवस्था पर पड़ने वाले उसके दूरगामी प्रभावों का सूक्ष्मं विश्लेषण प्रस्तुत किया है। ''धन निष्कासन का सबसे बुरा प्रभाव भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ा। उन्होंने स्पष्ट किया कि किस प्रकार धन के निष्कासन के परिणामस्वरूप भारत में पूँजी संचयन (capital accumulation) नहीं हो सका तथा भारतीय अर्थतंत्र दिन–प्रति–दिन दिशाहीन एवं कमजोर होता गया।''[11] ''यह सर्वविदित सत्य् है कि पूंजी का संचयन नहीं है तो औद्योगिक विकास भी किसी दशा में संभव नहीं। धन निष्कासन के परिणामस्वरूप लोगों का जीवन–स्तर लगातार गिरता चला गया और देश में गरीबी बढ़ती गई। उन्होंने इस तथ्य का भी उल्लेख किया कि धन के निष्कासन के चलते भारतीय जनता पर करों का बोझ बहुत अधिक बढ़ गया। साथ ही साथ भारत के कुटीर उद्योग विनाश के कगार पर पहुंच गए। भारतीय कृषि पर दबाव निरंतर बढ़ता गया और भूमिहीन कृषि मजदूरों की संख्या लगातार बढ़ती गई। इतना ही नहीं, भारतीय धन निष्कासन से रेशम उद्योग, व्यापार, कृषि आदि में निवेश नहीं हुआ। परिणामस्वरूप लोगों की प्रति व्यक्ति आय भी घटने लगी। अकाल की निरंतरता ने भारतीय कृषकों के जीवन को और भयावह बना दिया। एक मायने में यूरोप के अन्य राज्यों के सापेक्ष भारतीय लोगों का जीवन स्तर एवं जीवन–प्रत्याशा दोनों घटा। हालांकि, यही शोषित लोग कलान्तर में भारतीय राष्ट्रवाद के सामाजिक आधार बनकर उभरे।''[12]

दरअसल राष्ट्रवादी विचारकों ने धन के निष्कासन के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए साम्राज्यकवाद एवं राष्ट्रावाद के बीच अंतर्विरोध को पहचान लिया था और इस तरह आर्थिक राष्ट्रवाद की अवधारणा का जन्म भी हुआ। यही वजह है कि दादा भाई नौरोजी जैसे राष्ट्रावादी विचारक ने ब्रिटिश सरकार के लोकतांत्रिक विकास संबंधी सभी दावों को खारिज करने का तार्किक प्रयास करते हुए स्वराज्य व शिक्षा तथा स्वदेशी नियमन आदि को अपनाने पर बल दिया।

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

''कालांतर में नौरोजी की यही आर्थिक राष्ट्रवादी चेतना वर्ष 1906 ई.में अखिल भारतीय स्वदेशी आंदोलन के रूप में उभरकर सामने आने लगी। और, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार और स्वदेशी वस्तुओं के प्रसार का नारा अखिल भारतीय ढांचे को समग्रता में प्रभावित किया।''[13]

निष्कर्ष एवं सुझाव

समवेततः धन निष्कासन के विशेष संदर्भ में दादा भाई नौरोजी का आर्थिक चिंतन सही मायने में अर्थतंत्र के मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण का प्रबल संपोषक है। वैसे भी वैश्विकरण के इस दौर में आर्थिक गतिविधियों का मानवशास्त्रीय अध्ययन काफी महत्वपूर्ण हो जाता है। ''अपनी सामाजिक–आर्थिक चिंतन में राष्ट्रवादी विचारक दादा भाई नौरोजी द्वारा प्रतिपादित आर्थिक विकास की प्रक्रिया का मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण औपचारिक, कानूनी, संस्थानात्मक वर्णन के बजाय स्वादेशी पूंजी संचयन एवं व्यवहार पर अधिक बल देता है। उनका यह दृष्टिकोण कहीं–न–कहीं 'क्षेत्र कार्य प्रणाली' एवं 'अवलोकन पद्धति' अपनाने पर जोर देता है। ध्यातव्य है कि साम्राज्यावादी शक्तियां आज भी कायम हैं तथा विकासशील देशों के समक्ष खुले बाजार के रूप में अंतरराष्ट्रीय पूंजी निर्माण के तहत पूंजीवादी दबदबा आज भी सहज ही अनुभूत है।'' ऐसे में दादा भाई नौरोजी का आर्थिक दृष्टिकोण केवल भारत ही नहीं, अपितु विश्व के अन्य विकासशील राष्ट्रों के समक्ष भी आर्थिक विकास संबंधी गतिविधियों का एक ठोस प्रतिमान प्रस्तुत करता है जहां सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ में विकास राष्ट्र का विकास सर्वदा तर्कसंगत है।

संदर्भ सूचीः

1. परमार, डॉ. चिरंजीत, आर्थिक साम्राज्यवाद के खतरे, प्रांजल पब्लिशर्स, पृ.सं 16.
2. धीमान, प्रो. आर डी, ब्रिटिश कालीन भारतीय अर्थव्यवस्था, अमर प्रकाशन, पृ.सं. 85.
3. वहीं, पृ.सं. 107.
4. भटनागर, डॉ. मक्ता नंद, आधुनिक भारत के आर्थिक निर्माता, अनुसंधान प्रकाशन, पृ. सं. 53–54.
5. वहीं, पृ.सं. 63.
6. वहीं, पृ.सं. 67–68.
7. वहीं, पृ.सं. 81.
8. देव, प्रो. हर्ष, शर्मा, ब्रिटिश भारत की आर्थिक प्रणाली एवं प्रभाव, संकल्प प्रकाशन, पृ. सं. 142.
9. वहीं, पृ.सं. 145.
10. वहीं, पृ.सं. 151.

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

11. शुक्ला, डॉ. सुखदेव, दादा भाई नौरोजी : बहुआयामी व्यक्तित्व (अप्रकाशित शोध–ग्रंथ), पृ.सं. 115.
12. वहीं, पृ.सं. 177.
13. वहीं, पृ.सं. 246.

WRITERS VIEW
An Interdisciplinary, bilingual, bi-annual, a peer review or refereed, Indexed & Open Accesses International Research Journal
Vol. 5 No. 2 VIJAYADASHMI, Vikram Samvat 2077 Year 2(
ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

भारत में कानूनी शिक्षा के बदलते आयाम

डॉ. त्रियुगी नारायण मिश्र

शोध सारांश

भारतवर्ष में वर्तमान विधि व्यवस्था अंग्रेजी शासकों की देन है। समय परिवर्तनशील होता है। समय के परिवर्तन के साथ जो चीजें अपरिवर्तित रह जाती है, वे अप्रयुक्त या निष्प्रभावी हो जाती है। वर्तमान कानूनी शिक्षा को अपने को इस प्रकार परिवर्तित करना होगा जिसमें वह समय के अनुसार अपने को ढाल सके। इसके लिए भूत, वर्तमान एवं भविष्य की परिस्थितियों से सामंजस्य बैठाया जाना आवश्यक होगा।

बीज शब्द

वैश्वीकरण, विधिक शिक्षा, सर्वोच्च न्यायालय, बॉर कौसिंल, विश्वविद्यालय, अनुदान आयोग, राष्ट्रीय ज्ञान आयोग

सहायक आचार्य, विधि विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

शोध विस्तार

पिछले दशकों में विश्व ने कई बुरे दौर देखें हैं जिनमें मनुष्य एवं मनुष्य, देश एवं देश तथा सभ्यताओं के बीच संघर्ष होते रहे हैं। इस दौरान मानवाधिकारों का भी उल्लंघन हुआ, तो कहीं इसके लिए व्यापक स्तर पर कार्य भी हुए जिनसे इनको बचाये रखा जाय। इस दौरान विज्ञान, तकनीकी सूचना, संचार एवं विधि के क्षेत्र में भी परिवर्तन हुए। विश्व का मानचित ऐसे बदला जिसमें संपूर्ण विश्व अब एक परिवार जैसा लगने लगा। सभी देशों ने अपने को कुछ न कुछ अवश्य ही परिवर्तित किया। परिणाम यह हुआ कि व्यापार, वाणिज्य, विधि इत्यादि के क्षेत्रों में नये परिदृश्यों का अभ्युदय हुआ। विधि के क्षेत्र में भी विभिन्न नए द्वार खोले गये। अब पूरी दुनिया ज्ञान अर्थव्यवस्था पर महत्व दे रही है। इस ज्ञान अर्थव्यवस्था को विकसित करने के लिए विश्व के देश खासकर विकासशील देश ऐसी शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना हेतु प्रतिबद्ध है जो विश्व के बदलते परिदृश्य के अनुरूप तथा उपयोगी हो। वैश्वीकरण और भारतीय अर्थव्यवस्था एवं राजनीति के बदलते आयाम ने हमारे समक्ष नयी चुनौतियों को जन्म दिया है।[1]

प्रस्तुत शोध पत्र मौजूदा विधि पाठ्यक्रम की प्रभावशीलता तथा भारत में विधि शिक्षा की स्थिति का आकलन करने का एक प्रयास है।

वैश्वीकरण एवं विधिक शिक्षा : भारत जैसे विश्व के सर्वाधिक बड़े लोकतांत्रिक देश में जहाँ विधि का शासन सरकार की प्रेरणा शक्ति है, विधिक शिक्षा का बहुत अधिक महत्व है। सर्वोच्च न्यायालय ने भी केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य[2] के महत्वपूर्ण मामले में विधि के शासन को हमारे लोकतंत्र के एक आवश्यक संघटक के रूप में स्वीकार किया है। संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार का घोषणा पत्र कहता है ''विधि के समक्ष सभी समान है तथा बिना विभेद सभी विधि के सरंक्षण के अधिकारी है।''[3] सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि विधि–शासन संविधान का आधारभूत ढ़ाँचा हे और संविधान के अनुच्छेद 368 में संशोधन के द्वारा भी इसे नष्ट नहीं किया जा सकता है।[4] शिक्षा के व्यापक निहितार्थ है। यह मनुष्य को पूर्ण बनाने में मदद करती है। यह मनुष्य में पूर्णता की अभिव्यक्ति है। विधि की शिक्षा मनुष्य को सामाजिक रूप से जागरूक बनाती है तथा उसे कानून के पालन की बाध्यता से भी परिचित करती है। विधि की शिक्षा से समाज में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय स्थापित होता है।

वर्तमान समय में उच्च मानदण्ड वाले विधिक संस्थानों की स्थापना से हम समाज के बदलते परिदृश्य को नियंत्रित एवं दिशा देने में सफल हो सकते हैं। विधि की शिक्षा भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में शासन को संचालित करने के लिए अत्यन्त ही उपयोगी

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

है। मनुभाईवासी बनाम महाराष्ट्र राज्य[5] के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि – कानूनी शिक्षा को समाज की बढ़ती मांगो को पूरा करने के लिए सक्षम होना चाहिये। एक अन्य विद्वान सी0 राजकुमार[6] ने अपने लेख में कहा कि विधि शिक्षा वर्तमान में कुछ अच्छे संस्थानों तथा विद्यार्थियों दोनों के द्वारा मजबूत तो रही है, लेकिन विधि के क्षेत्र में स्तरीय शोध कर्ताओं की कमी तथा वर्तमान विधिक संस्थानों में प्रकाशन पर उचित जोर न होने के कारण बौद्धिक रूप से जीवंत वातावरण का अभाव हो गया है। वकील समाज की रीढ़ होते हैं और वे सामाजिक अभियांत्रिक भी हैं।

वैश्वीकरण एवं विश्व व्यापार संगठन समझौता : विश्व व्यापार समझौता 1995 में अस्तित्व में आया। भारत इसका प्राथमिक रूप से सदस्य बना। इस समझोते के अधीन गेट्स (GATS) बना।[7] इसने समझौते के पक्षकारों पर कुछ सामान्य बाध्यतायें अधिरोपित की। इसने राज्यों से अपेक्षा कि वे दूसरे राज्यों को ''सबसे पसंदीदा राष्ट्र'' का दर्जा दें। जिस से राज्य को पहुँच उस दूसरे राज्य के बाजार तक हो। इस प्रकार से हम यह पाते है कि हम यदि किसी विदेशी राष्ट्र को उपरोक्त श्रेणी में लायेंगे तो निश्चित रूप से वहाँ के विधि व्यवसायी की पहुँच हमारे देश में होगी। परिणाम स्वरूप हमारे देश के विधि व्यवसायियों को वैश्विक चुनोती मिलना स्वाभाविक है। यह भविष्य में हो सकता है जो यहाँ के विधि व्यवसायियों के लिए कठिन चुनौती बन कर उभरेगा। हमें इन विदेशी विधि व्यवसायियों से अगर टक्कर लेना है तो निश्चित रूप से हमें अपने आप को उस मानक पर ले जाना होगा जहाँ से हम वर्तमान वैश्विक चुनौती का सामना कर सके। इस वैश्विक परिवर्तन ने कानूनी पेशेवरों को अपने पेशे के प्रबन्धन तथा सेवाओं की आपूर्ति पर पुर्नविचार के लिए मजबूर कर दिया है।

वैश्वीकरण तथा विधिक शिक्षा का पाठ्यक्रम : भारत में विधिक शिक्षा का नियंत्रण तथा पर्यवेक्षण कई संस्थानों के द्वारा किया जाता है।[8] यद्यपि बार कौसिल तथा अन्य पर्यवेक्षणीय संस्थाओं के द्वारा प्रयास किये गये लेकिन इनमें सकारात्मक परिणाम अभी तक प्राप्त नहीं हो सके है। 1986 में बंगलौर में नेशनल लॉ स्कूल की स्थापना बार कौंसिल द्वारा विधिक शिक्षा को सुधार में किया गया पहला कदम था। यद्यपि अब इन नेशनल लॉ स्कूलों की संख्या में भी काफी वृद्धि हुई है। इसके बावजूद भी 21वीं शताब्दी की बदलती नई चुनौतियों हेतु अभी तक हमारे प्रयासों को पूर्ण सफलता नहीं मिल सकी है।[9] 2005 में राष्ट्रीय ज्ञान आयोग का गठन इस उद्देश्य से किया गया ताकि भारत के ज्ञान अर्थव्यवस्था तथा वर्तमान समाज में सुधारों को लाया जा सके। इस आयोग ने व्यवसायिक शिक्षा के एक महत्वपूर्ण संघटक के रूप में विधिक शिक्षा को एक महत्वपूर्ण घटक माना।

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

इस आयोग ने कहा कि पाठ्यक्रम ऐसे बनाये जाने चाहिए जो अन्य विषयों के साथ एकीकृत हों तथा जो लोग इन पाठ्यक्रमों से जुड़े हैं उनकी नियमित प्रतिक्रिया भी ली जानी चाहिए।[10] पाठ्यक्रमों को एक बहु विषयक निकाय पर आधारित होना चाहिए। इनका विस्तार इस प्रकार से किया जाना चाहिये जिसमें कानूनी नैतिकता, क्लिनिकल पाठ्यक्रम तथा आधुनिक मुध्य धारा के अनुरूप पेशेवर कानून विद तैयार हो जो कानूनी नैतिकता को ठीक से समझते हों।[11] हमें सोचना तो वैश्विक तरीके से होगा लेकिन कार्य स्थानीय तरीके से करना होगा।

निष्कर्ष : विश्व के सभी विषयों में से विधि एक ऐसा विषय है जो सदैव गतिशील है। इसकी गतिशीलता इसलिए भी आवश्यक है ताकि वह समयानुरूप होने वाले परिवर्तनों को अपने अनुरूप ढाल सके। यदि यह स्थायी हो गयी तो न तो यह उपयुक्त होगी और न ही इसे व्यवहारिक ही बनाया जा सकेगा। उन सभी संस्थाओं को जिन पर विधिक पाठ्यक्रमों को संचालित, संशोधित एवं मार्गदर्शन करने की जिम्मेदारी है, उन्हें इस दिशा में सदैव तत्पर रहना होगा ताकि विधिक शिक्षा किसी अन्य पेशेवर पाठ्यक्रम से पिछड़ न जाये। विधिक शिक्षा में कम्प्यूटर तकनीकी का अधिक से अधिक उपयोग होना चाहिए। एडवोकेट्स एक्ट 1961 की धारा 4 के अधीन गठित बार कौंसिल ऑफ इण्डिया जिस पर इस पाठ्यक्रम तथा पेशा दोनों पर नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण का अधिकार है, अपनी भूमिका को ठीक प्रकार से समझकर विधिक शिक्षा और अधिक मानवीकृत बनाने का प्रयास करना चाहिये। हमारी विधिक शिक्षा ऐसी हो जो ऐसे पेशेवर तैयार कर सके जो इस पेशें की वैश्विक चुनौती से अपने आप को टक्कर देने में सफल हो। हमारा ईमानदार प्रयास न केवल विधिक शिक्षा बल्कि विधिक पेशे को भी एक नई गति एवं ऊर्जा प्रदान करेगा। हमारे पुराने कानूनों जो आज भी प्रासंगिक हैं उनमें तथा वैश्विक विधियों से एक बेहतर सामंजस्य बनाकर ही हम विधिक शिक्षा को नया आयाम दे सकेंगे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मेनी डॉ0 एस0आर0; डब्लू0टी0ओ0 एशिया लॉ हाउस, दूसरा संस्करण 2003, पेज 114
2. ए0आई0आर0, 1973, सु0 कोर्ट 146
3. मानवाधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा का अनुच्छेद 7
4. उपरोक्त (2)
5. ए0आई0आर0, 1996 सु0 कोर्ट।
6. राजकुमार, सी0, वैश्वीकरण तथा विधिक शिक्षा, द हिन्दू, 9 जनवरी 2007
7. इसमें छः भाग, 29 अनुच्छेद तथा 8 अनुसूचिया ।

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

8. जैसे–बार कौंसिल ऑफ इण्डिया, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा विभिन्न विश्वविद्यालय इत्यादि।
9. मेनन, डॉ0 एन0आर0, रिफार्म इन लीगल प्रोफेशन : सम आइडियाज, पेज 204
10. राष्ट्रीय ज्ञान आयोग पर गठित कार्य समूह की रिपोर्ट।
11. न्यायमूति ए0एम0 अहमदी, ''रिपेयरिंग द क्रेक्स इन लीगल एजुकेशन'', पृ0 सं0 24

WRITERS VIEW
An Interdisciplinary, bilingual, bi-annual, a peer review or refereed, Indexed & Open Accesses International Research Journal
Vol. 5 No. 2 VIJAYADASHMI, Vikram Samvat 2077 Year 2(
ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

नक्सलवाड़ी : एक मूल्यांकन

डॉ. अभिषेक सिंह

शोध सारांश

प्रकृति या समाज में कोई नई परिघटना (फेनॉमेना) होती हैं तो एक वैज्ञानिक या समाज–वैज्ञानिक का पहला काम होता हैं उस तथ्य को स्वीकार करना इसके बाद उसका दूसरा काम होता हैं अधिकतम वस्तुगत तरीके से उक्त परिघटना विशेष की सांगोपांग समझने का प्रयास करना और तीसरा काम होता हैं, धरातल पर प्रकट लक्षणों, प्रमाणों को भेदकर उसकी अर्न्तवस्तु तक प्रवेश करना, उसे समग्रता में समझना। किसी ऐतिहासिक परिघटना के बुनियादी कारणों की अर्न्तवस्तु निर्माण में वस्तुगत तथा आत्मगत दोनों कारणों की भूमिका होती हैं। जहाँ वस्तुगत कारण वह आधार उपलब्ध कराते हैं जिसमें किसी परिघटना का जन्म होता हैं, अर्थात् वस्तुगत कारणों में वे परिस्थितियां होती हैं, जिनमें किसी घटना का जन्म होता हैं और आत्मगत कारणों में चेतना, विचारधारा तथा संगठन होतें हैं जो इन परिस्थितियों में जन्म लेने वाली परिघटना को आगे या पीछे ले जाते हैं।

बीज शब्द

साम्राज्यवाद, धन निष्कासन, पूंजी संचयन, स्वाधीन, औपनिवेशिक ढांचा, स्वदेशी, अवमूल्यन, मुक्त व्यापार, वैश्विकरण

रक्षा अध्ययन विभाग, महाराणा प्रताप स्नातोकोतर महाविद्यालय, जंगल धूषड़,

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

शोध विस्तार

जब हम नक्सलवाड़ी जैसे ऐतिहासिक महत्व की घटना के मूल कारणों पर विचार करते हैं, तो पाते हैं कि यह घटना अनेक आन्तरिक तथा वाह्य कारणों का प्रतिफल था। नक्सलवाड़ी के अध्येताओं में कुछ वाह्य कारणों को महत्व देते हैं, तो कुछ आन्तरिक कारणों को ही सब कुछ समझते है। कुछ वस्तुगत परिस्थिति को जिम्मेदार ठहराते हैं तो कुछ आत्मगत जैसे, विचारधारा, चेतना, पार्टी तथा नेतृत्व को सारा श्रेय देते हैं। सुमंत बनर्जी हमें बताते हैं कि'; ''नक्सलवाड़ी आन्दोलन यूरोप एशिया और अमेरिका में मार्क्सवाद के अन्दर क्रान्तिकारी मानवतावाद की पुनः खोज करके विकसित हुए रेडिकलिज्म और उसके आदर्शों से उत्प्रेरित व्यक्तिगत व बलिदान लिए तैयार रहने की भावना, राजनीतिक मौकापरस्ती के उपर नैतिकता को मिली प्राथमिकता, बोलिविया के जंगलों में चे गएतारा का आत्मत्याग, पश्चिमी यूरोप का वामपंथी छात्र आंदोलन, चीन की सांस्कृतिक क्रान्ति इत्यादि की मिली–जुली राजनीतिक परिघटना का अंग था।''[1], ''शंकर घोष जैसे अध्येता इस संघर्ष को साधारण संघर्ष मानते हैं तथा बताते हैं कि; नक्सलवाड़ी आंदोलन को बहुत बढ़ा–चढ़ा कर पेश किया गया शायद इसलिए चीनी समाचार माध्यम बार–बार तारीफ के अंदाज में उसका हवाला देते रहते थे।''[2]

अयोध्या सिंह नक्सलवाड़ी आन्दोलन का सारा श्रेय चीन की कम्युनिस्ट पार्टी को देते हैं, वे लिखते हैं कि; ''आन्दोलन को नया जीवन देने का श्रेय चीन की 'कम्युनिस्ट पार्टी' को हैं। इस पार्टी ने अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन में संशोधनवाद के खिलाफ संग्राम का नेतृत्व किया था, अतः भारत के कम्युनिस्ट आंदोलन में भी उसका बड़ा सम्मान था। खुद भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) के साथ उसके अच्छे सम्बन्ध थे। लेकिन संशोधनवाद के खिलाफ लड़ते–लड़ते वह खुद 1967 तक वामपंथी भटकाव का शिकार हों चुकी थी। वह अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन में आये वामपंथी संकीर्णतावाद की प्रवक्ता बन गयीं। भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) के प्रतिनिधियों से बात करने की जगह उसने खुलकर हस्तक्षेप करने का रास्ता अपनाया, उसने नक्सलवाड़ी आन्दोलन का समर्थन किया। संयुक्त फ्रंट सरकार तथा भा.क.पा. (मार्क्सवादी) के नेताओं को अमरीकी सम्राज्यवाद तथा सोवियत संशोधनवाद का कुत्ता और भारतीय पूजिपतियों का दलाल बताया।[3] वे यह मानते हैं कि ''चीन द्वारा नक्सलवादी आंदोलन के समर्थन ने भारत के कम्युनिस्ट आन्दोलन को बड़ा नुकसान पहुचाया, उसने खासकर मध्यवर्गीय नौजवानों का ध्यान नक्सलवाड़ी की तरफ खीचा और उसके अंदर यह विश्वास पैदा किया कि सशस्त्र संग्राम का समय आ गया हैं।''[4]

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

मोहनराम नक्सलवाड़ी का सारा श्रेय माओवाद को देते हैं, उनका कहना हैं कि नक्सलवाड़ी के मूल कारणो को तीसरी दुनियाँ में माओवाद की लोकयुद्ध की नीति के तहत रख कर देखा जाना चाहिए। वे चीनी कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा जून–जुलाई (1967) के दौरान भारत, वर्मा और इण्डोनेशिया क्रान्ति की आम अपील का हवाला देते हैं।[5]

विप्लव दास गुप्त जैसे विद्वान भी चीनी पार्टी के समर्थन को इसका मुख्य कारण मानते हुए उसे कम्युनिस्ट विरोधी लोगो की इच्छा पूरा करने वाला आन्दोलन मानते हैं। वे लिखते हैं कि ''अगर उस समय पश्चिम बंगाल में संयुक्त मोर्चा सरकार सत्ता में न होती तो शायद इस विद्रोह पर इतना ध्यान नहीं दिया जाता। नक्सलवाड़ी उन लोगों के लिए भी सुविधाजनक रहीं जो कम्युनिस्ट आन्दोलन का कई गुटों में विखर जाना पसंद करते थे और उसे संयुक्त मोर्चा सरकार को विध्वंस करने के लिए इस्तेमाल करना चाहते थें।''[6]

हम देखते हैं कि अधिकांश अध्येयता नक्सलवाड़ी आन्दोलन के मूल कारणों को भारतीय परिस्थितियों में खोजने की जगह अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में खोजते हैं, जबकि प्रकृति विज्ञान या सामाजिक विज्ञान के इतिहास ने यह साबित कर दिया हैं कि आन्तरिक गति प्रधान होती हैं। वाह्य कारक आन्तरिक गति को तेज करने या धीमा करने में महत्वपूर्ण भूमिका, निभाते हैं। आन्तरिक गति प्रधानता का यह नियम नक्सलवाड़ी आन्दोलन पर भी पूर्णतया लागू होता हैं। नक्सलवाड़ी आन्दोलन का अब–तक बने रहना तथा निरन्तर विकसित तथा विस्तातिर होते रहना भी, इस बात का प्रमाण हैं कि वह आन्तरिक परिस्थितियों की पैदाइश थीं, भले ही वाह्य परिस्थितियों ने भी इसमें निर्णायक भूमिका अदा की।

नक्सलवाड़ी आन्दोलन भारत की आन्तरिक परिस्थितियों की पैदाइश थीं। आर्थिक सामाजिक, राजनीतिक तथा वैचारिक सांस्कृतिक कारको ने एक साथ मिलकर इस आन्दोलन को जन्म दिया। इस सन्दर्भ में सोरेन बोस लिखते हैं कि ''1962 आते–आते नेहरू एवं कांग्रेस के अन्य नेताओं ने जनता के जिन मूलभूत मांगो को पूरा करने का वादा किया था, उसका खोखलापन लोगों को समझ में आने लगा था, फलतः आम जनता में विक्षोभ की स्थिति व्याप्त होती जा रही थीं। खाद्यान संकट बढ़ रहा था और विभिन्न फैक्टिरियों में मजदूर आन्दोलन भी जोर पकड़ रहा था। कुछ इलाको में तो किसान आन्दोलन भी शुरू हो गया था। मध्यमवर्गीय कर्मचारी, शिक्षक और सफेदपोश मजदूर भी हड़ताल की ओर अग्रसर हों रहे थे।''[7]

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

आर्थिक परिस्थितियाँ नक्सलवाड़ी आन्दोलन के बुनियादी कारणों में सबसे महत्वपूर्ण कारण थीं। नेहरू युग के अन्त के साथ भारत की आर्थिक परिस्थिति के सन्दर्भ में विपिन चन्द्रा लिखते हैं कि, ''भारत की अर्थव्यवस्था कुंठित हों रही थीं, औद्योगिक विकास दर में कमी आ रहीं थीं और विदेशी मुद्रा' भुगतान संतुलन बदत्तर होता जा रहा था। परंतु उस समय सबसे कठिन समस्या खाद्यान्नो का भारी अभाव था, कृषि उत्पादन कम हो रहा था और 1965 में कई राज्य गंभीर सूखे की चपेट में आ गए थे, खाद्यानों का आपात कालीन भंडार खतरनाक सीमा तक कम हो गए थे।''[8]

1965 के मध्य से जनता के अन्दर विक्षोभ उभार का रूप लेने लगा था क्योंकि उस समय गंभीर खाद्यान संकट के कारण बंगाल में अकाल की स्थिति बन गई थी जो 1966 तक भयंकर रूप धारण कर चुका था। अनाज के लिए दंगे होने लगे थे और जगह–जगह मालगाड़ियों से जाने वाले अनाज के डिब्बे तोड़े जाने लगे थे।[9] महगांई अपने चरम पर पहुँच गई थी, ग्रामीण आबादी के निचले 10 प्रतिशत के लिए मूल्य सूचकांक 10 वर्षों (1954–64) में 159 प्रतिशत बढ़ गया जबकि उसी बीच उपरी 10 प्रतिशत के लिए सिर्फ 79 प्रतिशत बढ़ा। इन दोनो विकास प्रवृत्तियों का अन्तर दिखाता हैं कि आबादी का उपरी 10 प्रतिशत भाग अपना जीवन स्तर निचले 10 प्रतिशत की कीमत पर बढ़ रहा है क्योंकि समाज के एक तबके का गरीब होते जाना वैभव के एक तरफ संचय के साथ–साथ चलता हैं।[10]

इसी सन्दर्भ को ध्यान में रखकर कार्लमार्क्स ने कहा था कि, ''गरीबी सक्रिय मजदूर सेना का विकलांग गृह और औद्योगिक रिजर्व सेना के गले का पत्थर होता है। उसकी संरचना सापेक्ष अतिरिक्त जनसंख्या के साथ जुड़ी हैं। अतिरिक्त जनसंख्या के साथ–साथ गरीबी का अस्तित्व पूँजीवादी उत्पादन और वैभव विकास की आवश्यक शर्त है।''[11] नक्सलवाड़ी के आंदोलन के समय करीब 40 प्रतिशत आबादी न्यूनतम उपभोग सीमा के नीचे जीवन निर्वाह कर रहीं थीं, इसी हिस्से का उपभोग न्यूनतम सीमा का लगभग 3/5 प्रतिशत था।[12]

इस दौर में आर्थिक स्थिति काफी जटिल थी। अर्थव्यवस्था में काफी मंदी थीं। औद्योगिक उत्पादन और निर्यात दोनो ही कम हो रहें थे। 1966 में दूसरे वर्ष लगातार बारिश नहीं हुई और 1965 के मुकाबले में भी कही अधिक गंभीर सुखा पड़ा। इसके परिणाम स्वरूप मुद्रास्फीति उछाल ले रही थीं। देश के बहुत बड़े हिस्से में खासकर बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश में सूखे की स्थिति बनी हुई थीं। 1962 और 1965 के युद्धों तथा पाकिस्तान–चीन के सैनिक सहयोग के कारण सैनिक खर्चे में तीखी वृद्धि हुई थीं,

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

जिससे बहुत सारा संसाधन नियोंजन एवं आर्थिक विकास से बाहर हो गया था।[13] जिसका परिणाम गरीबी, अकाल, भूखमरी, मंहगाई तथा बेरोजगारी के रूप में सामने आया। गरीबी, बेरोजगारी, मंहगाई के साथ जिस बुनियादी केन्द्रीय कारण ने नक्सलवाड़ी को जन्म दिया वह था भूमि पर जोतने वालो के मालिकानें का प्रश्न।

स्वतंत्रता आन्दोलन के पूरे दौर में गरीब, भूमिहीन तथा सीमान्त किसानों की सबसे बड़ी मांग, भूमिपर मालिकाने की थीं। नक्सलवाड़ी आन्दोलन की रीढ़ यही ग्रामीण सर्वहारा, अर्द्धसर्वहारा तथा छोटे किसान थें। यह तथ्य मार्क्सवादी सिद्धान्तो से भी पूरी तरह सिद्ध हैं। रूस में सर्वहारा क्रान्ति के अनुभवों से पुरी तरह प्रमाणित हैं कि ग्रामीण जनता के तीन वर्ग– 'ग्रामीण–सर्वहारा', 'सर्व–सर्वहारा' और छोटे किसान आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से समाजवाद में रूचि रखते हैं, लेकिन वे क्रान्तिकारी सर्वहारा को दृढ़ समर्थन तभी देगें जब वह राजनीतिक शक्ति प्राप्त कर ले। जब वह बड़े भूस्वामियों और जंमीदारों से सख्ती से निपट चुका हों, जब यें पददलित लोग व्यवहार में देख चुके हों कि उनके पास एक संगठित नेता और प्रवक्ता हैं जो इतना मजबूत और दृढ़ हैं कि उनकी सहायता कर सके, उनको नेतृत्व दे सके और उनको सही रास्ता दिखा सके।[14]

यही वर्ग भूमि के मालिकाने के प्रश्न पर नक्सलवाड़ी आन्दोलन के साथ उठ खड़ा हुआ। भूमि सुधार के चरित्र के सन्दर्भ में सटीक तौर पर यह कहा जा सकता हैं कि आजादी के बाद सत्ता प्राप्त पूजीपति वर्ग के प्रतिनिधियों ने भूमि–सुधारो एवं अन्य विकास योजनाओं के जरियें राजा, महाराजाओं, नवाबों, जमीदारों और भूस्वामियों से जमीन लेकर वास्तविक काश्तकारो को सौपने की जगह उन्हें पूंजीवादी भूस्वामी में बदलने का अवसर दिया, ये कदम भारतीय पूंजीपति वर्ग के हित में थी और सामन्तो तथा शोषकों के हित में भी थी।

भारतीय पूंजीपति वर्ग ने एक ऐसी पूँजीवादी कृषि–अर्थव्यवस्था को बढ़ावा दिया जिसके शीर्ष पर पुरानी आर्थिक–सामाजिक संरचना के भूस्वामी ही रहे, साथ ही पहले के रैय्यत भूस्वामियों तथा एक हद तक ठेठ किसानों के बीच से एक देहाती पूंजीपति वर्ग पैदा हुआ। इस व्यवस्था में सरकार ने देहाती शोषको को लूट की छुट दी, किसानो की उनकी जमीन से बेदखल होने दिया, उन्हें सड़को पर दूरस्थ स्थानो पर जाकर रोटी कमाने और अपमान झेलने के लिये बाध्य कर दिया। इस व्यवस्था ने गाँव के गरीबों को मण्डी की अर्थव्यवस्था और पूँजी की नग्न पाशविक क्रुरता के सामने ला खड़ा किया। नक्सलवाड़ी आन्दोलन के नेता जंगल संथाल ने जमीन से बेदखली को नक्सलवाड़ी

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

आन्दोलन का महत्वपूर्ण कारण बताया, उन्होंने कहा कि ''साम्य सिढठान चाय वगान की जिस घटना के साथ आन्दोलन को जोड़ने की कोशिश की जा रही हैं, वह इसलिए घटी की चाय बगान का मालिक सरकारी खास जमीन को बीस–बीस साल से जोतने–बोने वाले किसानो को बेदखल करने और उनकी जगह नयें आदमियों को बसाने की कोशिश किया जा रहा था। किसानों की जमीन पर इन नये आदमियों के घर बनवायें जा रहें थें, इससे संघर्ष पैदा हो रहा था। नक्सलवाड़ी की घटना में संघर्ष उस वक्त शुरू हुआ जब दीवानी अदालत से जमीन पर अधिकार, पाने वाले बिगुल किसान को मार–पीटकर बेदखल करने की कोशिश की गयी। मार्के की बात यह हैं कि सारे क्षेत्र में चाय बगान अधिकारी और जंमीदार पुलिस की सहायता से गरीब किसानों को बेदखल करने की भरपूर कोशिश करते रहें।''[15]

भारत में भूमि सुधारों का स्वरूप कैसे जमीदारों तथा बड़े भू–स्वामियों के पक्ष में था, इस बात से समझा जा सकता है कि हैदराबाद के निजाम को दस करोड़ की वार्षिक पेंशन व अनेक महल और खजानो समेत, 20,000 एकड़ जमीन रखने की इजाजत दी गई। सरकार ने जंमीदारो को मुआवजे में छः करोड़ दिए। भूमि सुधार कानून इस प्रकार बनायें गयें थे कि उनके रहते हुए जंमीदारिया बचा लेना आसान हों गया था।[16] खुद कृषि मंत्रालय की रपट के अनुसार हदबंदी कानून असंगतिपूर्ण नीति, अधूरे कानून और अंकुशल क्रियान्वयन का एक उदाहरण थें।[17] नक्सलवाड़ी आन्दोलन ने भूमि के मालिकाने ने नक्सलवाड़ी विद्रोह के उस भ्रांति का अंत दिखाया जो सुधार कानूनो के साथ जुड़ी हुई थीं। यह सर्वविदित हों गया कि देश की सरकार न तो समर्थ हैं और न दरअसल चाहती हैं कि सुधार को कानूनी रूप से आगे विकसित किया जाए और व्यवहार में लाए। देहातों में संपति संबंधो में परिवर्तन स्वयं कृषि उत्पादकों को ही करना था।[18]

कृषि उत्पादको को यह अपने लंबे सघर्ष के अनुभव से समझ में आ गया था कि देहातों में सम्पत्ति सम्बन्धो में परिवर्तन राजसत्ता पर कब्जा किये बिना सम्भव नहीं हैं। इसी कारण से नक्सलवाड़ी आन्दोलन के सबसे बड़े प्रणेता चारू–मजूमदार ने लिखा हैं कि ''अगर नक्सलवाड़ी का किसान संघर्ष जो हमारे लिए कोई सबक रखता हैं तो वह यह हैं जुझारू संघर्ष, जमीन, फसल, बगैरन्ह के लिए नहीं, बल्कि राजसत्ता पर अधिकार के लिए चलाने होगे। ठीक यही बात नक्सलवाड़ी संघर्ष को अद्वितीय बना देता हैं। विभिन्न क्षेत्रों के किसानों को अपने को इस तरह तैयार करना होगा कि वे अपने क्षेत्र में राजयंत्र को प्रभावहीन बना सके। भारत में किसान संघर्षो के इतिहास में पहली बार नक्सलवाड़ी में ही यह रास्ता अपनाया गया हैं।[19]

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

चारू मजूमदार ने बाद में देशव्रती में भी लिखा कि नक्सलवाड़ी के संघर्ष में जो शिक्षा हमें दी हैं वह यह हैं कि किसान इसमें जमीन या फसल के लिए शामिल न हुआ था बल्कि राजसत्ता पर अधिकार करने के लिए शामिल हुआ था।[20] क्योंकि किसान यह समझ गया था कि क्रांतिकारी भूमि सुधार अर्थात् सम्पत्ति सम्बन्धों में बुनियादी परिवर्तन क्रान्ति अर्थात् राजसत्ता पर कब्जा किए बिना सम्भव नहीं हैं। इसी बात की पुष्टि नक्सलवाड़ी के दूसरे बड़े नेता कानू सन्याल ने अपनी तराई रिपोर्ट में लिखी थी कि, ''तराई का किसान आंदोलन जमीन के लिए नहीं बल्कि राज्य सत्ता के लिए सशस्त्र सग्राम हैं।''[21]

इस प्रकार हम भूमिसुधार के सन्दर्भ में देखते हैं कि तेभागा आन्दोलन ने कृषि सुधारो की अंतर्वस्तु की घोषणा करके कृषि सुधारो के युग का प्रवर्तन किया। तेलंगाना आन्दोलन ने सामंती शोषण और उत्पीड़न से देहाती जन समुदाय की मुक्ति का लक्ष्य सशस्त्र संघर्ष से हासिल करने का प्रयास किया, तो नक्सलवाड़ी आन्दोलन ने भूमि संबंधो के बदलाव के प्रश्न को राजसत्ता के प्रश्न के साथ जोड़ दिया, क्योंकि बड़े–बड़े जंमीदारो और देहातों में अंग्रेजो की मेहरबानी से सत्ता के शिखर पर आए लोग आजादी के बाद भी सत्ता के शिखर पर बने रहें।[22]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि नक्सलवाड़ी आन्दोलन के मूल देहातो में सम्पत्ति सम्बन्धो में क्रान्तिकारी परिवर्तन था। किसी भी व्यापक जनान्दोलन या क्रान्तिकारी संघर्ष के पीछे जहाँ आर्थिक कारक बुनियाद में होते हैं, वही आर्थिक संकटो के साथ राजनीतिक तथा सामाजिक संकट भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। यदि हम नक्सलवाड़ी आन्दोलन के समय के भारत की राजनीतिक परिस्थितियों पर विचार करे तो पाते हैं कि यह राजनीतिक अस्थिरता का दौर है। साथ ही सामाजिक संकट भी सतह पर तेजी से उभरकर सामने आ रहें हैं। नेहरू युग की स्थिरता निरन्तर कमजोर होती जा रही थीं। इस सन्दर्भ में बिपिन चन्द्रा लिखते हैं कि ''नेहरू ने जन आन्दोलन, जन जागरणों और शैक्षणिक अभियानों द्वारा सामाजिक ढांचो की बुराइयों, जैसे जाति–प्रथा, पुरूष प्रधानता, परिवारवादी तंत्र, गांवो के गरीबों का गांवो के अमीरो पर आश्रित होना, बढ़ते हुए भष्ट्राचार आदि के विरूद्ध भी बूरे दम–खम से जेहाद छेड़ने की कोशिश नहीं की। उन्होंने समाज के प्रभुत्वशाली वर्गो की सहमति और हृदय परिवर्तन पर बहुत ज्यादा जोर दे डाला।[23]''

जाति प्रथा की श्रेणी क्रमता को तोड़ने तथा पितृसत्ता की जकड़ से महिलाओं की मुक्ति की अनिवार्य शर्त थी कि प्रभुत्व के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, वैचारिक,

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

राजनीतिक तथा चेतनागत तत्वो के खिलाफ निर्णायक संघर्ष सभी स्तरो पर हो। इस सन्दर्भ में बी.सर्मा.मार्ला. का कहना उचित हैं कि कृषि क्षेत्र में लगी उत्पादक शक्तियों को बुनियादी परिवर्तन के लिए गोलबंद करके ही सम्पन्न एवं प्रभुत्वशाली जातियों के सामाजिक प्रभाव को खत्म किया जा सकता हैं। कृषि क्षेत्र में लगी उत्पादक शक्तियों को समाजवादी लक्ष्यों के साथ गोलबंद करके ही जातिवादी मूल्य व्यवस्था और संस्कारों के अवशेषो, भाषाई तथा क्षेत्रिय अंतर्विरोधी और प्रजातिक तथा धार्मिक शत्रुतता को खत्म किया जा सकता हैं।''[24]

भारत में अधिकांश भू–स्वामी उच्च जातियों या पिछड़ी जातियों के बीच की उच्च जातियों के रहें हैं। सर्वहारा, भूमिहीन, मजदूरों, गरीब किसानो का अधिकांश हिस्सा दलितो तथा निम्न शुद्रो से बना हैं। भू–स्वामित्व के अनुपात में उच्च जातियों के विशेषाधिकारो और निम्न शुद्रो, मुसलमानों और विशेष कर अछुतो की असुविधाजनक स्थिति की सापेक्ष निरंतरता देखने को मिलती है। साथ ही जाति व्यवस्था की विचाराधात्मक तथा राजनीतिक भूमिका भी रही।[25] इसी कारण हम देखते हैं कि नक्सल–आन्दोलन के सामाजिक आधार भूमिहीन, छोटे किसान, छोटी जोतो वाले कुछ मध्यम किसान तथा जाति के सन्दर्भ में निचली तथा मध्यम जातियाँ रहीं हैं।[26]

नक्सलवाड़ी आन्दोलन के मूल में आर्थिक सामाजिक संकटो के साथ राजनीतिक संकट (जो राजनीतिक अस्थिरता के रूप में सामने आयी थी) की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही हैं, किसी भी क्रान्तिकारी जन उभार की आवश्यक शर्त होती हैं कार्यरत संस्थाओं, सरकार तथा संगठनों पर से लोगो का विश्वास कमजोर पड़े। वर्ष 1966 को लगातार चले आने वले व्यापक उथल–पुथल के वर्षो में ही गिना जा सकता हैं। इस समय व्यापक आर्थिक असन्तोष बढ़ती कीमतो से सुलगे हुए राजनीतिक आन्दोलन, खाद्य पदार्थो का अभाव, बढ़ती बेरोजगारी और एक सामान्य आर्थिक पतन की परिस्थिति बन रही थीं। इस बढ़ते हुए असंतोष में उपर से समाज के विभिन्न तबको खास तौर पर निम्न मध्यमवर्ग की अपूर्ण आकांक्षाए आग में घी का काम कर रही थीं। बहुत सारे लोग अपनी आकांक्षाओ को संतुष्ट कर पा रहें थे, परन्तु अनेक लोग थें जो ऐसा कर पाने में असमर्थ थें। इसके अलावा विकास की पूंजीवादी पद्धति विभिन्न सामाजिक वर्गों, समूहों और तबको के बीच आर्थिक असमानता को लगातार बढ़ा रही थी।[27] जन उभार का नया दौर सामने उपस्थित था, 1966 आते–आते इस उभार ने राज्य और कांग्रेस मंत्रिमण्डल के खिलाफ हिंसात्मक रूप अख्तियार कर लिया। इसी दौरान भुवनेश्वर में इंदिरागांधी पर पथराव किया गया, रक्षा मंत्री चौहान को बिहार के पटना हवाई अडडे से उड़ने नहीं दिया गया। इस स्थिति

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

को देखकर ऐसा लगता था जैसे 1945–46 के दिन वापस आ गया हों।[28] सोरेन बोस की बात का समर्थन बिपिन चन्द्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुर्खजी भी करते हैं। वे लिखते हैं कि जिस समय इंदिरा गांधी को प्रधानमंत्री के रूप में शपथ दिलाई जा रही थी उस समय जन आंदोलनो, प्रदर्शना, छात्र–हड़ताल, दंगे, सरकारी कर्मचारियों द्वारा आन्दोलन की एक लहर सी चल रही थी। ये आन्दोलन अक्सर हिंसक हो उठते थे। बंद के आयोजनो के रूप में एक नई चीज सामने आई, जो शहरो, महानगरो या सम्पूर्ण राज्य के काम–काज को ठप्प करने की कोशिश करती थीं। आन्दोलन कारी भीड़ लाठी लिए पुलिस वालो के साथ अक्सर उलझकर कानून और व्यवस्था तोड़ देती थी। कई बार सेना बुलानी पड़ी। इस लाठी चार्जे और पुलिस फायरिंग ने प्रशासन को और भी बदनाम कर दिया शिक्षकों और अन्य मध्यमवर्गीय पेशेवर लोग जैसे डाक्टर और इंजीनियर भी हड़तालियों और आन्दोलनकारियों के कतार में शामिल होने लगे, जिनकी मांगे कीमतो में अचानक वृद्धि का मुकाबला करने के लिए ऊँचा वेतन तथा मंहगाई भत्ता आदि से संबधित होती थी। प्रशासन एवं सत्ताधारी राजनीतिक नेतृत्व में जनता का विश्वास घटता ही जा रहा था।[29] जनता के घटते विश्वास ने क्रान्तिकारी नक्सलवाड़ी उभार की परिस्थिति की गति को तेज कर दिया। फरवरी 1967 में लोकसभा तथा राज्य विधानसभाओं के लिए हुए चौथे आम चुनाव का भारतीय राजनीति पर निर्णायक प्रभाव पड़ा। कांग्रेस पार्टी अपना जनादेश खो चुकी थी और सामाजिक एवं संस्थागत परिवर्तन की पार्टी के रूप में उसका चरित्र और प्रेरणा चुक गयी थीं। बड़े पैमाने पर इससे लोगों का मोह भंग हो चुका था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 1967 में भारत का आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक संकट ऐसे मुकाम पर पहुँचा था जहाँ से एक नये परिवर्तन की शुरूआत हों सकती थी। इस नये परिवर्तन का स्वरूप दो रूपों में सामने आया व्यवस्था में सुधार तथा व्यवस्था में क्रान्तिकारी रूपान्तरण। अर्थात नेहरू युग के अन्त का संकट दो रूपों में अपने को अभिव्यक्त किया, पहले रूप में राजनीतिक परिवर्तन हुआ जिससे कांग्रेस को कई राज्यों में पराजय का मुह देखना पड़ा, जिससे मध्यम वर्ग कुछ संतुष्ट हुआ लेकिन नीचले तबके, गरीब किसान और खेतीहर मजदूर असन्तुष्ट रहें जिससे कई किसान आन्दोलन सामने आयें, इसके साथ ही नक्सलवाड़ी का जन्म होता हैं।[30]

संदर्भ सूची

1. सुमंत बनर्जी – इंडियाज सिमरिंग रिवोल्यूशन – द नक्सलाइट अयराइंजिग, सिलिक्टिड सर्विस सिडीकेट, दिल्ली, 1984 पृ0 88
2. शंकर घोष – नक्सलाइट, मूवमेंट, फार्मा के एल मुखोपाध्याय कलकत्ता 1975, पृ0 2–3

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

3. अयोध्या सिंह – समाजवाद भारतीय जनता का संघष–संस्करण, 2001 अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0) लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ0–295
4. अयोध्या सिंह – समाजवाद भारतीय जनता का संघर्ष–संस्करण, 2001 अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0) लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ0– 295–96
5. मोहनराम, – माओइज्म इन इंण्डिया, विकास दिल्ली, 1971, पृ0 IV B
6. विप्लव दास गुप्ता – नक्सलवाड़ी आन्दोलन मैकमिलन प्रकाशन, 1981, पृ0 14–15
7. सोरेन बोस – नक्सवाड़ी किसान विद्रोह और उसके बाद समकालीन बहस–संपादक अर्जुन प्रसाद सिंह नन्द किशोर सिंह, पृ0–3
8. बिपिन चंद्र – आजादी के बाद का भारत', हिन्दी माध्यम कार्यालय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय पृ0 294
9. सोरेन बोस – नक्सलवाड़ी किसान विद्रोह और उसके बाद समकालीन बहस संपादक, अर्जुन प्रसाद सिंह नंद किशोर सिंह नवम्बर, 1996 पृ0 3
10. बी0 समीमाली – गांवो में वर्ग संघर्ष संपादित, भारत में किसान संघर्ष, पृ0–60
11. कार्ल मार्क्स – दास कैपिटल खंड–1, पृ0 673
12. बी0 फिरोज मेढ़ोर – प्रोगेस ऐट टाटाईज प्रेस, इकोनामिक एंड पोलिटिकल वीकली एनुअल नंबर, फरवरी 1973, बंबई पृ0 315
13. बिपिन चन्द्र – आजादी के बाद का भारत, हिन्दी माध्यम कायीन्वयन, नई दिल्ली पृ0 300
14. वी0आई0 लेनिन – सिलेक्टेड वर्क्स, खण्ड II पृ0–647, प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1982
15. उद्धत, प्रमोद सेन, गुप्त, नक्सलवाड़ी एंड इंडियन रिवोल्यूशन, रिसर्च इंडिया पब्लिकेशन कलकत्ता, 1983–63
16. अभय कुमार दुबे – क्रांति का आत्मसंघर्ष (नक्सलवाड़ी) आंदोलन के बदलते चेहरे का अध्ययन विनय प्रकाशन दिल्ली, 1991, पृ0 561
17. क्रिस्ट्रियन सिग्रिट – भारत में किसान संघर्ष, मैकमिलन प्रकाशन नई दिल्ली, पृ0–32
18. क्रिस्ट्रियन सिग्रिट – भारत में कृषि संघर्ष संपादक – अमलेदु, गुप्ता, गेरह्वार्ट हाउक, वी0सर्मा मार्ला, मैकमिलन, 1980 नई दिल्ली, पृ0 40–41
19. चारू–मजूमदार – 'वन इयर ऑफ नक्सलवाड़ी स्ट्रगल' लिबरेशन 1968, उद्यृत शकर घोष–दि नक्सलाइट मूवमेंट के0एल0 मुखोपाध्याय, कलकत्ता 1974, पृ0 38
20. चारू मजूमदार – 'भारतीय क्रान्तिकारी किसान संघर्ष की फसल काटो और आगे बढ़ो'' देशव्रती, 4 दिसंबर 1969, प्रमोद सेनगुप्त नक्सलवाड़ी एंड इण्डियन रिवोल्यूशन, रिसर्च इण्डिया पब्लिकेशन, कलकत्ता 1983, पृ0 62
21. कानू सन्याल – रिपोर्ट ऑन पीजेन्ट मूवमेन्ट इ दि तराई, पृ0–12

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

22. अभय कुमार दूबे – क्रान्ति का आत्म संघर्ष (नक्सलवाड़ी आन्दोलन के बदलते चेहरे का अध्ययन), पृ0–57
23. विपिन चन्द्र – आजादी के बाद का भारत, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली संस्करण 2010, पृ0–247
24. वी0समी0मार्ला0 – भारतीय गांवो में जाति संघर्ष, संपादित भारत में किसान संघर्ष, मैकमिलन प्रकाशन 1980, नई दिल्ली, पृ0–109
25. गेरहार्ट हाउक – वर्ग, समाज और जाति व्यवस्था संपादित भारत में किसान संघर्ष, संपादन–क्रिस्ट्रिन सिग्रिस्ट, अमलेदुं गुह्म, वी0सार्मा0मार्ला, मैकमिलन, प्रकाशन नई दिल्ली, 1980, पृ0 133
26. बेला भाटियाँ – दि नक्सलाइट मुवमेट इन सेन्टरल बिहार ई0पी0 डब्ल्यू0 अप्रैल 9, 2005, पृ0–1536
27. विपिन चन्द्र – आजादी के बाद का भारत, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली पृ0 302
28. सोरेन बोस – नक्सलवाड़ी किसान विद्रोह और उसके बाद समकालीन बहस, संपादक अर्जुन सिंह, नंद किशोर सिंह नवम्बर 1996, पृ0–3
29. विपिन चन्द्र – आजादी के बाद का भारत, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय 2010, पृ0–302
30. डी0 एन0 – पोलिटिकल इकोनोमी आफ दि नेहरू इरा इकोनोमिक पीलिटकल विकली, स्पेशल नम्बर 1988, पृ0 246

WRITERS VIEW
An Interdisciplinary, bilingual, bi-annual, a peer review or refereed, Indexed & Open Accesses International Research Journal
Vol. 5 No. 2 VIJAYADASHMI, Vikram Samvat 2077 Year 2(
ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

दक्षिण भारत की ग्राम समितियाँ और जल-प्रबन्धन

डॉ. विनोद कुमार

शोध सारांश

जल ही जीवन है यह आज का लुभावना उद्घोष भले ही लगे, लेकिन यह जैव विकास के साथ जुड़ा हुआ है। जल जीवन के लिए आवश्यक तो है ही जीवन जल से प्रारम्भ हुआ था और जलमय है, यह तथ्य विज्ञान समर्थित है। यही कारण है कि जल विद्यमानता जड़–चेतन, आकाश–पाताल, भू–तल में किसी न किसी रूप में है। जल का किसी भी दशा में क्षय नहीं होता।

ध्यातव्य है कि विश्व के तमाम अंचलों की भाँति भारत में भी जल–प्रबन्धन का विषय सदा जीवन्त रहा है, जो साहित्य, अभिलेख आदि साक्ष्यों के आलोक में स्पष्टतः देखा जा सकता है। वर्तमान समय में तो जल की समस्या गंभीर संकट का स्वरूप ग्रहण करती जा रही है। तमाम प्रयासों के बावजूद पेय जल की उपलब्धता सभी को सुनिश्चित नहीं कराई जा सकी है। भू–जल स्तर के नीचे खिसकने और जल स्रोतों के दूषित होने की समस्या भी है। जल–प्रबन्धन की ऐसी तमाम समस्याओं की तरफ दक्षिण भारत के शासकों ने समुचित ध्यान दिया और इसे प्रशासन का महत्वपूर्ण अंग मानकर ग्राम स्तर तक समितियों का गठन किया। इस शोध–पत्र में ग्रामीण स्तर पर जल–प्रबन्धन के विषयों पर विचार करने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द

जल–प्रबन्धन, प्रशासकीय नीति, सरोवरों का महत्व, तड़ाग समिति, कुद्दी मरम्मत, पूर्त–धर्म, लोक धर्म

पोस्ट डॉक्टोरल फेलो (आई.सी.एच.आर.), प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

शोध विस्तार

उत्तर भारत से पृथक दक्षिण भारत में जल–प्रबन्धन प्रशासकीय नीति का अंग बन चुका था। दक्षिण भारत में तेलंगाना और कर्नाटक का भौगोलिक स्वरूप जलाशयों के निर्माण के लिए अत्यन्त उच्च कोटि का है। तेलंगाना में अधिकतम सिंचाई तड़ागों से होती है। वह सहस्त्रभूमि तड़ाग के नाम से विख्यात है। कर्नाटक की घाटी में एक सहस्त्र तड़ाग है। इनमें रामसागर तड़ाग सबसे बड़ा है।[1] नीलकण्ठ शास्त्री ने कल्याणी के चालुक्यों के सन्दर्भ में कहा है कि अभिलेखों से मन्दिरों के बाद इसी विषय (तड़ाग) का सबसे अधिक महत्व मालूम पड़ता है।[2] अभिलेखों से ज्ञात होता है कि शासन ने नदियों एवं भग्न तालाबों के जीर्णोद्धार पर प्रभूत धन व्यय किया। साथ ही साथ एक ऐसा प्रशासनिक ढाँचा विकसित किया जो ग्राम स्तर तक तड़ागों की व्यवस्था को देखता था।

दक्षिण के पांड्यों, पल्लवों एवं चोलों की ग्राम प्रशासन चलाने वाली समितियों में तड़ाग समिति का बहुत महत्व था। उत्तर भारत में इस प्रकार की समितियों के उल्लेख नहीं मिलते हैं। पल्लव एवं चोल काल में ग्रामीण अंचल के जलाशयों की देख–रेख की जिम्मेदारी आज की भाँति ग्राम सभाओं की होती थी। एक अभिलेख में इस बात का भी उल्लेख है कि जब रैय्यतें अपनी–अपनी जोतों पर देय भुगतान चुकाने में असफल रहे तब ग्रामसभा ने यह राशि चुकता की और उनकी भूमि तीन वर्ष के लिए तड़ाग हित में रख ली। इस अवधि में वे लोग सभी देय भुगतान कर अपनी भूमि वापस ले लेते थे। अन्यथा यह भूमि तड़ाग लाभार्थ में बेच दी जाती थी।[3] यदि उत्तर मलूर का कोई भी व्यक्ति इस विक्रय पर कोई आपत्ति उठाता था तो उसकी स्वयं की भूमि उसी प्रकार से बेच दी जाती थी और विक्रय से प्राप्त आय तड़ाग के पक्ष में जमा कर दी जाती थी। यदि कोई पंच इस पर आपत्ति उठावे तो गाँव से उसका निर्वासन कर दिया जाता था।

ग्राम सभा जैसी स्थानीय शासन समितियों द्वारा सिंचाई का प्रबन्धन करने का उल्लेख भी है। मैसूर में एक ग्राम में स्थानीय सभाओं ने तालाब की रक्षा के लिए एक गाड़ीवान को रखने का निर्णय किया था। जो आज के नगरपालिका के कर्मचारी सदृश्य था। दक्षिण भारत के एक शिलालेख में 'एरिअयम' नामक कर का सन्दर्भ है जिसको ग्राम सभाएं सिंचाई साधनों की रक्षा के लिए एकत्र करती थीं।[4] ग्राम सभाओं द्वारा कर्मचारियों को प्रायः अन्नादि दिया जाता था। परन्दुर की सभा ने पंचवर की धानों की 150 कड़ी तालाब की रक्षा के लिए देना स्वीकार किया था। दान दिये गये धन से जो ब्याज मिलता था उससे भी मरम्मत का कार्य होता था। धनाभाव में ग्राम सभाएं मरम्मत के लिए भूमि अथवा गाँव की खाली भूमि बेच सकती थी। ग्रामवासी स्वतः इस कार्य में भाग लेते थे।

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

दक्षिण भारत में कुद्दी मरम्मत की प्रथा चलती है जिसका अभिप्राय रैय्यत द्वारा लघु मरम्मत के लिए मजदूरों को लगाना है। आज भी कानूनी तौर पर रैय्यतों को यह कार्य करना पड़ता है।[5]

रक्षा और मरम्मत कार्यों के निरीक्षण के लिए प्रत्येक गाँव में एक समिति रहती थी। उत्तर मलूर से प्राप्त दसवीं सदी के एक अभिलेख में ग्राम सभाओं के संविधान तथा उनके सभासदों को चुनने का सविस्तार वर्णन है। ग्राम सभा में अनेक समितियाँ होती थीं जिनमें एक तड़ाग समिति भी थी। तड़ाग समिति के 6 सदस्य 1 वर्ष के लिए चुने जाते थे। एक व्यक्ति दुबारा इस समिति का सदस्य नहीं हो सकता था। यदि सदस्य कोई अपराध करता था तो उसे तुरन्त हटा दिया जाता था।[6] सम्भवतः तालाब के लिए दिये गये सारे धन का यह समिति प्रबन्धन करती थी। तालाबों के मरम्मत हेतु प्राप्त भूमि में बोने आदि का ध्यान रखती थी। ये तड़ाग की मिट्टी को हटवाने का प्रबन्ध करती थी एवं आवश्यक होने पर मरम्मत कार्य का भी सम्पादन करवाती थी।[7]

प्रत्येक नाडु या ग्राम में कम से कम एक जलाशय का अस्तित्व दिखाई देता है। ग्रामों के इन सरोवरों को 'चेर्रुवु' या कन्नड़ भाष में 'केर्रे' कहा जाता था। ग्राम समितियों द्वारा निर्मित सरोवर छोटे थे, किन्तु राजपरिवार के सदस्य, सामन्त, अधीनस्थ सामन्त तथा धनाढ्य वणिकों द्वारा बनवायें गये सरोवर बहुत विशाल होते थे। वृहत आकार के सरोवरों के नाम के साथ 'समुद्र' शब्द प्रायः मिलता है। इस सम्बन्ध में विशेष रूप से उल्लेखनीय मल्याल एवं रेचेर्रल वंशों द्वारा निर्मित बड़े–बड़े सरोवर हैं। इनमें चावुंड–समुद्र, वाच समुद्र, गणप–समुद्र, कुप्प–समुद्र आदि सरोवरों का निर्माण मल्यालों ने कराये थे, जबकि सव्व समुद्र, नाम समुद्र, विश्वनाथ समुद्र, गौर समुद्र, एरेर्र समुद्र, लकुमा समुद्र इत्यादि थे।[8]

ध्यातव्य है कि जल संसाधन के प्रयास मात्र सरोवर निर्माण तक ही सीमित नही थे। उनके देख–भाल तथा उसकी सफाई पर भी विशेष ध्यान दिया जाता था। वर्षा एवं नदियों के जल के दबाव से सरोवरों के बन्धों के टूटने की आशंका सदैव बनी रहती है। इससे बचने के लिए पहाड़ी क्षेत्रों में जहाँ प्रस्तर सुलभ थे वहाँ बन्धों को पत्थर से निर्मित किया गया तथा मैदानी क्षेत्रों में तड़ागों को सुरक्षित रखने के लिए इनके चारों तरफ 'कट्टव' नामक वृक्ष लगाये जाते थे।[9]

नदियों के जल के साथ आये मिट्टी एवं बालू तथा तल में जमी मिट्टी के कारण तालाब की जल धारण क्षमता कम हो जाती थी। इस उद्देश्य से इन सरोवरों की तलहटी से समय–समय पर बालू एवं मिट्टी निकाली जाती थी। 9वीं सदी के पल्लव

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

अभिलेखों से ज्ञात होता है कि इस कार्य के लिए उत्पादित खाद्यान्न का एक भाग दिया जाता था।[10] सरोवरों का विस्तार भी समय–समय पर किया जाता था। इनके देख–रेख तथा मरम्मत करने वाले को कुछ भूमि पर खेती करने का स्थायी अधिकार दे दिया जाता था। कभी–कभी ऐसे तालाबों से सिंचित होने वाली भूमि की उपज का दसवाँ हिस्सा उन्हें दे दिया जाता था, जो मरम्मत आदि के कार्य करते थे। इसीलिए इस व्यवस्था को 'दशबन्ध' कहा गया है।[11]

गंग–पल्लव वंशीय राजा दन्ति विक्रमवर्मन के लेख में है कि तालाब में जमी मिट्टी दान में दी गई भूमि के आय से निकाली जाती थी और जो दान दी गई भूमि का प्रबन्ध करते हैं उन्हें अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। कम्पवर्मन के शासन काल में अर्काट तालुका के उक्कल के तालाब के लिए ग्राम की तड़ाग समिति को धान का दान दिया गया था।[12] राजेन्द्र चोल के शासनकाल में नाव के प्रबन्धन हेतु ग्राम सभा द्वारा भूमि बेचा गया था। इन नावों का प्रयोग तालाब की जमी मिट्टी निकालने के लिए किया जाता था। राजकेशरी के काल में भी ऐसे सन्दर्भ प्राप्त होते हैं।[13] ग्रामवासियों ने तड़ाग के लिए कर देना स्वीकार किया था। तड़ाग–प्रबन्धन समिति ने यह कर लगाया तथा इसने प्रति वर्ष तड़ाग की जमी मिट्टी हटाना स्वीकार किया था। यदि कोई व्यक्ति अपना भाग देने से इंकार करता था तो राजा को अधिकार था कि वह उसे अर्थदण्ड दे और मरम्मत का कार्य पूर्ण करवा ले।[14]

एक लेख में वर्णित है कि ग्राम सभा ने एक व्यक्ति से मंदिर में पूजन एवं उसी व्यक्ति द्वारा बनवाये गये सभा भवन में धार्मिक व्याख्यान हेतु 100 काशु की निधि प्राप्त की। सभा ने इस धन का प्रयोग बाढ़ से विनष्ट नहरों के जीर्णोद्धार में किया।[15] तालाबों की मरम्मत के लिए 'एरिप्पट्टि' नामक दान का प्रयोग होता था।[16]

त्रिचनापल्ली के दो लेखों में उन व्यक्तियों का उल्लेख है जिनके दान के ब्याज से तड़ाग समिति प्रतिवर्ष पानी की धारा से इक्ट्ठी मिट्टी निकालने तथा बांध की व्यवस्था करने का कार्य करती थी।[17] एक अन्य लेख में उत्तर मेरू की सभा द्वारा स्थायी निधि स्वीकार करने का उल्लेख है।[18] एक चोल अभिलेख से ज्ञात होता है कि सभा ने उन खेतों के बदले जो संद्यः निर्मित तालाब के तल में डूब गये थे, दूसरे खेते दिये।[19]

दक्षिण भारतीय शासकों ने सरोवर निर्माण की योजना का अनुसरण किया और ऐसे क्षेत्रों में भी तड़ाग निर्मित कराये गये जहाँ पहले तड़ाग नहीं थे, इसी के साथ पुराने तड़ागों की देख–रेख एवं मरम्मत पर भी ध्यान दिया गया। सरोवरों में जलद्वार होते थे तथा इनमें से पानी ले जाने के लिए नहरें निकाली जाती थी। अभिलेखों में उल्लिखित

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

कचिननि काल्व, लोतलिकाल्व, रविकाल्व, प्रोल्रेड्डिड काल्व, रेड्डिड काल्व, दाडल काल्व, मेडविरूप काल्व, मद्दिमड्डिड काल्व, रायसहस्र मल्ल काल्व एवं गडपेंडार काल्व ऐसे नहरों के सन्दर्भ हैं जो सरोवरों से सिंचाई के लिए निकाली जाती थी।[20] सम्भव है कि ये नहरें सीधे सींचन हेतु खेतों में भी जाती हो। तालाबों को नदियों के जल से भरने का जो विवरण पल्लव अभिलेखों में मिलता है, कालान्तर में वह आम प्रयोग बन जाता है। अब सरोवर सदैव जल से भरे रहते थे जिससे सिंचाई पूरे वर्ष होती रहती थी। नहरों के माध्यम से सरोवरों को नदियों से जोड़ने की विधा उत्तरोत्तर लोकप्रिय होती गई।

तत्कालीन आर्थिक जीवन में इन सरोवरों का अत्यधिक महत्व था। सरोवरों का अस्तित्व गाँवों में था, लेकिन ये आकार में छोटे–छोटे होते थे तथा इनके जल का स्रोत मात्र वर्षा थी। इन सरोवरों में अल्प जल का संरक्षण ही सम्भव था। दक्षिण भारतीय शासकों ने यह अनुभव किया कि यदि राज्य के अनेक नदियों एवं जलधाराओं के जल को संचित कर, कृषि के लिए प्रयोग किया जाय तो लाल बलुई मिट्टी में आर्द्र फसलों को बहुत अधिक मात्रा में उगाया जा सकता है जिससे राज्य के आर्थिक समृद्धि में वृद्धि होगी। इसीलिए उन्होंने ग्राम समितियों के संगठन एवं सामंजस्य द्वारा बड़े सरोवरों अथवा बांधों के निर्माण का विचार किया।[21]

शासन की दृष्टि में इन तालाबों के महत्व पर प्रकाश नीलकण्ठ शास्त्री ने विस्तार से डाला है। उनके अनुसार तमाम तरह की आय के साथ विविध अपराधों के जरिये वसुली गई दण्ड की राशि तालाब आदि जल स्रोतों के रख–रखाव पर व्यय की जाती थी।[22] दक्षिण भारतीय इन जल संसाधनों की प्रशंसा में क्रोल द्वारा व्यक्त विचार है कि इन संसाधनों में बहुत से ऐसे हैं जो उपेक्षित या भग्न हो चुके है, किन्तु प्राचीन काल के शासकों द्वारा कृषि के विस्तार एवं जल संरक्षण के लिए किये गये प्रयासों के प्रति उनकी तीव्र इच्छा के ये साक्षी हैं।[23]

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि जल–संरक्षण के लिए समाज के सभी वर्गों ने अपना योगदान दिया जिसमें शासक से लेकर साधारण ग्रामीण एवं कृषक तक सम्मिलित थे। उत्तर भारत में जिस प्रकार पुण्य प्राप्ति, मोक्ष प्राप्ति तथा स्वर्ग की कामना ने जलाशय निर्माण को प्रेरित किया, उसी प्रकार दक्षिण भारत में भी यह धारण विद्यमान दिखाई देती है। वास्तव में पूरे भारत वर्ष में पूर्त–धर्म, लोक धर्म का रूप धारण कर चुका था। महाभारत के अनुशासन पर्व[24] में जलाशय बनाने तथा बगीचे लगाने से प्राप्त होने वाले पूण्य की प्रशंसा की गई हैं। देवता, मनुष्य, गन्धर्व, पितर, नाग, राक्षस तथा समस्त स्थावर प्राणी जलाशय का आश्रय लेते हैं। जलदान सब दानों से महान माना गया है

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

(सर्वदानै–र्गुरूतरं सर्वदानैविशिष्यते)। वास्तव में ऐसे सरोवरों के निर्माण को 'सप्त संतानों में सम्मिलित किया गया है।[25] अपनी कीर्ति चिर स्थायी करने तथा पुण्य प्राप्ति के उद्देश्य से साधन सम्पन्न व्यक्ति अपने या किसी देवता के नाम पर सरोवर निर्माण कराते थे।[26]

संदर्भ सूची:

1. एम0 एस0 रंधावा, ए हिस्ट्री आफ एग्रीकल्चर इन इण्डिया, प्रकाशक भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, दिल्ली, 1980, पृष्ठ 319
2. जी0 याजदानी, दक्कन का प्राचीन इतिहास, हैदराबाद, 1953, पृष्ठ 402.
3. गवर्नमेण्ट एपिग्राफिस्ट की रिपोर्ट, 1898, सं0 61, पृष्ठ 19
4. तत्रैव, 1919, सं0 140, पृष्ठ 66
5. आर्क्योलाजिकल सर्वे आफ इण्डियन एनुअल रिपोर्ट 1903–04, पृष्ठ 211
6. राधाकुमूद मुखर्जी, लोकल गवर्नमेण्ट इन एंशियण्ट इण्डिया, दया पब्लिसिंग हाउस, 1985, पृष्ठ 167–68
7. सत्यश्रवा, प्राचीन भारत में सिंचाई, नई दिल्ली, 1954, पृष्ठ 22
8. याजदानी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 651
9. तत्रैव, पृष्ठ 651
10. आर0 एन0 नन्दी, स्टेट फारमेशन एग्रेरियन ग्रोथ एंड सोसल चैलेन्जेज इन फेडुअल साउथ इंडिया, मनोहर पब्लिशर एंड डिस्ट्रीब्यूटर, यू0के0, 2000, पृष्ठ 51
11. तत्रैव, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 51
12. साउथ इण्डियन इंस्क्रीप्सनस, भाग तीन, अंक 1, 1987, पृष्ठ 9
13. सत्यश्रवा पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 11–12
14. 1903 में प्रकाशित लेख, अंक 226
15. गवर्नमेण्ट एपिग्राफिस्ट की रिपोर्ट 1912, पृष्ठ 16, सं0 214
16. तत्रैव, 1919, सं0 140, पृष्ठ 66
17. तत्रैव, 1903 सं0 342, पृष्ठ 342, 343
18. आर0सी0 मजूमदार, प्राचीन भारत में संगठित जीवन, पृष्ठ 183
19. गवर्नमेण्ट एपिग्राफिस्ट की रिपोर्ट, 1907, सं0 84
20. एन0 वेंकटरमनैया तथा एम0 सोमेश्वर शर्मा, वारंगल का काकतीय वंश, पृष्ठ 652
21. तत्रैव, पृष्ठ 650
22. याजदानी (सं0), पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 402
23. तत्रैव, पृष्ठ 120, 123
24. महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय 58, अनु0प0 58.21
25. एन0 वेंकटरमनैया तथा एम0 सोमेश्वर शर्मा, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 650
26. तत्रैव, पृष्ठ 650

WRITERS VIEW
An Interdisciplinary, bilingual, bi-annual, a peer review or refereed, Indexed & Open Accesses International Research Journal
Vol. 5 No. 2 VIJAYADASHMI, Vikram Samvat 2077 Year 2(
ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

दक्षिण और दक्षिण पूर्वी एशिया में भारतीय दर्शन

डॉ. अंजना राय

शोध सारांश

दक्षिण पूर्वी एशिया को दो भागों में विभाजित किया जा सकता हैः प्रथम– मुख्य भूमि जिसे इंडोचायना भी कहते हैं इसके अन्तर्गत आने वाले देशों में कम्बोडिया, लाओस, वर्मा, थाईलैण्ड, वियतनाम और प्रायद्वीपीय मलेशिया है। दूसरा भाग– समुद्री दक्षिण पूर्वी एशिया इसमें ब्रुनेई, पूर्व मलेशिया, पूर्वी तिमोर, इंडोनेशिया, फिलीपींस, क्रिसमस द्वीप और सिंगापुर जैसे देश शामिल हैं।[1]

दक्षिण पूर्वी एशिया के अन्तर्गत आने वाले ये सभी देश भारतीय दर्शन और ज्ञान से प्रभावित थे जिसके लिये प्रसिद्ध भाषाशास्त्री जेम्स मातिसोफ (James Matisoff) ने इण्डोस्फीयर (Indosphere) शब्द दिया जिसका शाब्दिक अर्थ है 'भारतीय प्रभाव क्षेत्र' जो दक्षिण पूर्वी एशिया के उन क्षेत्रों को सूचित करता है जिन पर भारत का भाषाई और सांस्कृतिक प्रभाव है।[2]

बीज शब्द

हिन्दू दर्शन, बौद्ध दर्शन, हीनयान, महायान, वज्रयान, शैव धर्म

स्वतंत्र शोध अध्येता, गोरखपुर

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

शोध विस्तार

दक्षिण पूर्वी एशिया में भारतीयकरण के प्रसार के लिये तीन सिद्धान्त प्रचलित हैं: प्रथम–वैश्य सिद्धान्त जिसके अनुसार व्यापारियों द्वारा व्यापार के माध्यम से भारतीय दर्शन और ज्ञान दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों में पहुँचा। द्वितीय–क्षत्रिय सिद्धान्त जिसके अनुसार क्षत्रिय योद्धाओं ने विजय के माध्यम से राज्य स्थापित किया और भारतीय संस्कृति वहाँ पहुँची लेकिन उपर्युक्त दोनों सिद्धान्त पूर्ण व्याख्या प्रस्तुत नहीं करते और तृतीय–ब्राह्मण सिद्धान्त सबसे व्यापक रूप से स्वीकृत सिद्धान्त है जिसके अनुसार ब्राह्मण विद्वानों के वर्ग के माध्यम से भारतीयकरण का प्रसार हुआ। इन विद्वानों ने वैश्य व्यापारियों द्वारा स्थापित समुद्री मार्गों का प्रयोग किया और अपने साथ दक्षिण पूर्वी एशिया के अभिजात्य वर्ग में प्रचार करने के लिये हिन्दू धार्मिक और दार्शनिक परम्पराओं में से अनेक को अपने साथ लाये। एक बार जब भारतीय दर्शन और परम्पराओं को कुलीन वर्गों में अपनाया गया तो उन्होंने सभी निम्न वर्गों में उनका प्रसार किया। इस प्रकार दक्षिण पूर्वी एशियाई समाज के सभी वर्गों में मौजूद भारतीयकरण की प्रक्रिया को समझने का प्रयत्न किया जाता है। हालांकि इन विद्वानों का प्रभाव धर्म और दर्शन के क्षेत्रों से आगे भी था और जल्द ही दक्षिण पूर्वी एशिया ने अनेक भारतीय प्रभावित कानूनों और वास्तुकलाओं को भी अपनाया।[3]

केवल एक सिद्धान्त को आधार बनाने की अपेक्षा तीनों सिद्धान्तों का एक संयोजन दक्षिण पूर्वी एशिया के भारतीयकरण की व्याख्या कर सकता है। एक व्यापक समुद्री व्यापार नेटवर्क था जिसके सहयोग से व्यापारी दक्षिण पूर्वी एशिया से सोना और मसाले ला पाते थे। एक बार जब यह व्यापार नेटवर्क स्थापित हो गया तो इसने दक्षिण पूर्वी एशिया क्षेत्रों में भारतीय योद्धाओं के लिये सैन्य पराक्रम का प्रदर्शन करने का मार्ग प्रशस्त किया।[4] इस व्यापक व्यापार नेटवर्क[5] ने विद्वानों के आगमन के लिये मार्ग तैयार किया जिन्होंने कानून, कला और दर्शन के अपने ज्ञान से दक्षिण पूर्वी एशिया के अनेक कुलीनों को प्रभावित किया। इस प्रकार विद्वानों के माध्यम से भारतीय और हिन्दू दर्शन के अनेक विधाओं को दक्षिण पूर्वी एशिया के सभी सामाजिक वर्गों में प्रचारित किया गया।[6]

दर्शन वह ज्ञान है जो परम सत्य और प्रकृति के सिद्धान्तों और उनके कारणों की विवेचना करता है।[7] अन्य शब्दों में दर्शन यथार्थता की परख के लिये एक दृष्टिकोण है। दार्शनिक चिंतन मूलतः जीवन की अर्थवत्ता की खोज का पर्याय है। दर्शन अध्यात्म का मूलाधार है। भारत में धर्म और दर्शन परस्पर ऐसे रचे–बसे हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। दोनों की परम्परा समान गति से निरन्तर प्रवाहमान द्रष्टव्य है।[8] भारत

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

चिरकाल से एक दर्शन प्रधान देश रहा है।[9]भौतिक जगत का मिथ्यात्व तथा निराकार ब्रह्म का सत्य एवं सर्वव्यापकता यहाँ सदैव विचार का विषय बने रहे हैं।[10] भारतीय दार्शनिक विचारधारा को समय की दृष्टि से चार कालों में विभाजित कर सकते हैं :

1. वैदिक काल में वेद से उपनिषद् तक रचा साहित्य
2. महाभारत काल : चार्वाक और गीता का युग
3. बौद्ध काल : जैन तथा बौद्ध धर्म का युग
4. उत्तर बौद्ध काल : न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्व तथा उत्तर मीमांसा का युग

कालान्तर में दर्शन की दो विधायें सामने आयीं एक हिन्दू दर्शन और दूसरा बौद्ध दर्शन और दोनों में पूरा भारतीय दर्शन समाहित था और यही दर्शन भारत से निकलकर पूरे विश्व में फैला। यद्यपि भारतीय संस्कृति का प्रसार सम्पूर्ण विश्व में हुआ लेकिन दक्षिण पूर्वी एशिया में इसका प्रसार सर्वाधिक दिखायी देता है। स्पष्ट शब्दों में कहा जाये तो भारतीय ज्ञान, विज्ञान और दर्शन के प्रभाव में आकर ही दक्षिण पूर्वी एशिया के अनेक देश सभ्य देश की श्रेणी में आ सके।[11]

हिन्दू दर्शन और बौद्ध दर्शन के प्रभाव ने दक्षिण पूर्व एशिया में रहने वाली अनेक सभ्यताओं पर एक जबरदस्त प्रभाव डाला जिसने लिखित परम्पराओं को संरचना प्रदान की।[12] इन धर्मों के प्रसार और अनुकूलन के लिये एक आवश्यक कारक तीसरी और चौथी शताब्दी की व्यापारिक प्रणालियों से उत्पन्न हुये।[13] जैन और बौद्ध धर्मों के दर्शन को फैलाने के लिये बौद्ध भिक्षु और हिन्दू पुजारी अपने धार्मिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों और विश्वासों को साझा करने की चाह में व्यापारी वर्गों के साथ चल दिये।[14] मीकांग डेल्टा के साथ, भारतीय धार्मिक मॉडल के प्रमाण फुनान नामक समुदायों में देखे जा सकते हैं।[15] वो कान्ह में एक चट्टान पर उत्कीर्ण सबसे प्राचीन अभिलेख पाये जा सकते हैं।[16] उत्कीर्णन में बौद्ध अभिलेखागार एवं संस्कृत में लिखी गयी दक्षिण भारतीय लिपियाँ शामिल हैं जो उरी शताब्दी के आरम्भिक आधी से सम्बन्धित है। भारतीय दर्शनों को स्थानीय संस्कृतियों ने गहराई से अवशोषित किया और अपने स्वयं के आदर्शों को प्रतिबिंबित करने के लिये इन संरचनाओं के अपने विशिष्ट रूप परिभाषित किये।[17] दक्षिण पूर्व एशिया के विभिन्न राज्यों में भारत की संस्कृत भाषा का व्यापक प्रचार–प्रसार था। कम्बुज, चम्पा, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो आदि से संस्कृत भाषा में लिखे गये लेख प्राप्त होते हैं। लेख की शैली काव्यात्मक है तथा इनमें संस्कृत के प्रायः सभी छन्दों का प्रयोग मिलता है।[18] इनके लेखक संस्कृत व्याकरण के नियमों से पूर्ण परिचित लगते हैं। अभिलेखों से पता चलता

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

है कि इन देशों में वेद, वेदान्त, स्मृति, रामायण, महाभारत, पुराण आदि ब्राह्मणग्रन्थों के साथ ही साथ विभिन्न बौद्ध एवं जैन ग्रन्थों का अध्ययन किया जाता था। कालिदास का भी वहाँ के साहित्य पर गहरा प्रभाव दिखायी देता है। वहाँ के नरेश विद्वान एवं विद्वानों के आश्रयदाता थे। जावा के निवासियों ने न केवल संस्कृत का अध्ययन किया, अपितु इन्होंने भारतीय साहित्य के अनुकरण पर अपना एक विस्तृत साहित्य निर्मित किया जिसे 'इण्डो–जावानी साहित्य' कहा जाता है।[19] लगभग पाँच सौ वर्षों तक इस साहित्य का विकास होता रहा। जावा में महाभारत के आधार पर अनेक ग्रन्थों की भी रचना हुयी जिनमें अर्जुन विवाह, भारतयुद्ध, स्मरदहन, सुमनसान्तक आदि उल्लेखनीय हैं। भारतीय स्मृति तथा पुराणों पर आधारित भी अनेक ग्रन्थों की रचना की गयी। 'अर्जुनविवाह' की रचना ऐरलंग (1019–42) ई0 के शासन काल में हुयी थी। कडिरि राज्य के समय 'कृष्णायन' की रचना हुयी जिसमें कृष्ण द्वारा रूक्मिणी हरण तथा जरासंघ के वध की कथा है। रघुवंश के आधार पर 'सुमन सान्तक' लिखा गया। स्मरदहन का आधार कालिदास का 'कुमारसंभव' है। महाभारत के उद्योग, भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य आदि पर्वों के आधार पर 'भारत युद्ध' नामक ग्रन्थ की रचना की गयी।

दक्षिणी–पूर्व एशिया के विभिन्न देशों में ब्राह्मण तथा बौद्ध दर्शन का बोलबाला था। वर्मा तथा स्याम में बौद्ध धर्म का प्रचलन था जबकि अन्य देशों में पौराणिक हिन्दू धर्म ही विशेष रूप से लोकप्रिय था। पौराणिक देवताओं में शिव, विष्णु तथा ब्रह्मा विशेष लोकप्रिय थे। शैव धर्म तो वहाँ का राजधर्म था। शिव की पूजा लिंगों तथा मूर्तियों दोनों के रूप में की जाती थी। शिव के रौद्र तथा सौम्य दोनों ही रूपों से जावानी परिचित थे। महादेव तथा महाकाल के नाम से उनकी पूजा की जाती थी। दोनों रूपों की मूर्तियाँ विभिन्न स्थानों से मिलती हैं। महादेव की शक्ति देवी, महादेवी पार्वती अथवा उमा की भी उपासना की जाती थी। दुर्गा अथवा महाकाली की पूजा भी होती थी। शिव–पार्वती के पुत्र गणेश तथा कार्तिकेय को भी जावा में देवरूप में पूजा जाता था। गणेश की मान्यता विघ्न–विनाशक के रूप में थी। विष्णु की पूजा नारायण, पुरुषोत्तम, माधव आदि नामों से की जाती थी। कई स्थानों से विष्णु की चतुर्भुजी मूर्तियां भी प्राप्त होती हैं। उनके प्रतीक के रूप में शंख, चक्र, गदा तथा पद्म का अंकन मिलता है। चम्पा से शेषनाग पर शयन करते हुए विष्णु की मूर्ति प्राप्त होती है। कम्बुज का अंकोरवाट स्थित विष्णु मंदिर वहाँ उनकी लोकप्रियता का जीता–जागता प्रमाण है। कृष्ण, राम, मत्स्य, वाराह तथा नृसिंहावतार के रूप में भी विष्णु की मूर्तियाँ बनाई गयीं। जावा के निवासी इन अवतारों– सम्बन्धी विभिन्न पौराणिक कथाओं से परिचित थे। शिव तथा विष्णु के

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

अतिरिक्त ब्रह्मा की भी पूजा होती थी। मूर्तियों में उनके चार मुख दिखाये गये हैं जो हंस पर विराजमान हैं तथा अपने हाथ में माला, चमर, कमल तथा कमण्डल धारण किये हुए हैं। ब्रह्मा की शक्ति सरस्वती की भी मूर्ति मिलती है। तीनों देवताओं को एक साथ मिलाकर 'त्रिमूर्ति' कहा गया तथा इस रूप में भी उनकी पूजा का प्रचलन था। इन देवताओं के अतिरिक्त कुछ अन्य भारतीय देवी–देवताओं जैसे– यम, वरुण, अग्नि, इन्द्र, कुबेर, सूर्य, चन्द्र आदि की पूजा भी दक्षिणी–पूर्वी एशिया के विभिन्न भागों में प्रचलित थी।

बौद्ध धर्म के विभिन्न सम्प्रदाय जैसे हीनयान, महायान, वज्रयान आदि का भी दक्षिणी–पूर्वी एशिया के देशों में प्रचलन था। इत्सिंग के अनुसार श्रीविजय बौद्ध धर्म का प्रमुख केन्द्र था। वह लिखता है कि यह धर्म दक्षिणी–पूर्वी एशिया के द्वीपों में दूर–दूर तक फैल चुका था तथा 10 से अधिक देशों में सर्वास्तिवाद यश फैला था, जबकि कुछ भागों में महायान मत का भी प्रचार था। आठवीं शती से महायान मत की प्रधानता हो गयी और यह मलाया के अतिरिक्त सुमात्रा तथा जावा में द्रुत गति से फैल गया। बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार में शैलेन्द्र शासकों का महान् योगदान रहा। जावा का बोरोबुदूर स्तूप वहाँ बौद्ध धर्म की लोकप्रियता का सूचक है। विभिन्न रूपों में बुद्ध की मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। सभी धर्मों में पारस्परिक सामंजस्य था। इस समय हिन्दू तथा बौद्ध देवताओं को संयुक्त करने का प्रयास किया गया। शिव, विष्णु तथा बुद्ध को परस्पर संयुक्त कर पूजा करने की भावना बलवती हो गयी। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारत के जैन–धर्म के सिवाय अन्य सभी धर्मों का सुदूर–पर्व में व्यापक प्रचार–प्रसार था। वहाँ के निवासी वैदिक यज्ञों का भी अनुष्ठान करते थे तथा दानादि द्वारा पुण्यार्जन में विश्वास रखते थे। रामायण तथा महाभारत जैसे ग्रन्थों का नियमित पाठ भी किया जाता था।[20]

अन्त में यह कहा जा सकता है दक्षिण एवं दक्षिण पूर्वी एशिया के अधिकांश देशों में जीवन के विविध पक्षों पर भारतीय दर्शन प्रभावी था और भारतीय दर्शन के आधार पर ही दक्षिण पूर्वी एशिया की सभ्यता विकसित हुयी।

सहायक स्रोत :

1. सत्यकेतु विद्यालंकार : दक्षिण–पूर्वी और दक्षिणी एशिया में भारतीय संस्कृति।
2. जेम्स मातिसोफ : हैंडबुक ऑफ प्रोटो– तिबेतो – बर्मन (यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस)

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

3. स्मिथ, मोनिका, एल0 : (1999) ''इण्डियानाइजेशन'' फ्राम द इण्डियन प्वाइंट ऑफ व्यू : ट्रेड एण्ड कल्चरल कान्टैक्ट्स विथ साउथइस्ट एशिया इन द अर्ली फर्स्ट मिलेनियम सी0 इ जरनल ऑफ द इकोनामिक एण्ड सोशल हिस्ट्री आफ द ओरिएण्ट।
4. नीलकण्ठ शास्त्री : दि चोलाज, भाग–1, आक्सफोर्ड, मद्रास, 1955
5. एस0आर0 राव : शिपिंग इन एंशिएंट इंडिया : इंडियाज कन्ट्रीब्यूशन टु वर्ल्ड थॉट एण्ड कल्चर।
6. शरद हेबालकर : एंशिएंट इंडियन पोर्ट्स, मुंशीराम, मनोहरलाल पब्लिशर्स, दिल्ली, 2001 ई0
7. डॉ0 राधाकृष्णन : इण्डियन फिलासफी, खण्ड 1 पृ0 90–95
8. चन्द्रगुप्त वेदालंकार : वृहत्तर भारत पृ0 187–202
9. रमेशचन्द्र मजूमदार : दि क्लासिकल एज पृ0 645–646
10. सच्चिदानंद भट्टाचार्य : भारतीय इतिहास कोश
11. चीनी यात्री फाह्यिान का यात्रा विवरण, (अनुवाद जगमोहन वर्मा) नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली (मूल प्रथम सं0, नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 1918 में प्रकाशित) 1996.
12. राहुल सांकृत्यायन : एशिया के दुर्गम भूखंडों में 1893–1963 (भारतीय प्रकाशन संस्थान)
13. चन्द्रदत्त पालीवाल : द्वीपान्तर : इंडोनेशिया का इतिहास : दीपान्तर में भारतीय संस्कृति, विदेशी शासन और नवयुग।
14. न्यू पर्नेल्स, इंग्लिश एनसाइक्लोपीडिया में 'मलेशिया' पर एन्ट्री।
15. डॉ0 सत्यव्रत शास्त्री : दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों में बसी रामकथा।
16. खान होआ संग्रहालय में इसकी एक प्रतिकृति।
17. फणीश सिंह : दक्षिण–पूर्व एशिया पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव
18. सत्यकेतु विद्यालंकार : प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन।
19. सत्यकेतु विद्यालंकार : एशिया का आधुनिक इतिहास पृ0 263–295
20. के0सी0 श्रीवास्तव : प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, पृ0 798–869

WRITERS VIEW
An Interdisciplinary, bilingual, bi-annual, a peer review or refereed, Indexed & Open Accesses International Research Journal
Vol. 5 No. 2 VIJAYADASHMI, Vikram Samvat 2077 Year 2(
ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

मुद्राओं के आलोक में भारत-रोम व्यापार

डॉ. मणिन्द्र यादव

शोध सारांश

कृषि के अतिरिक्त व्यापार तथा वाणिज्य प्राचीन भारत के आर्थिक जीवन का प्रमुख आधार रहा है। व्यापार–वाणिज्य को राज्य की तरफ से भी प्रोत्साहन एवं संरक्षण प्रदान किया जाता था जिसके परिणामस्वरूप भारत के आन्तरिक एवं बाह्य व्यापार में अत्यधिक विकास हुआ। प्राचीन काल में विश्व के अनेक देशों के साथ भारत के राजनैतिक और आर्थिक सम्बन्ध रहे हैं जैसा कि वर्तमान में भी है। प्राचीन समय में विश्व के अन्य देशों की तुलना में, भारत–रोम सम्बन्ध का मुख्य आधार राजनैतिक न होकर व्यापारिक था और इस व्यापारिक सम्बन्ध के कारण दोनों देशों की मुद्राओं के साथ–साथ संस्कृतियाँ भी एक–दूसरे की तरफ प्रवाहित होती रहीं।

बीज शब्द

वस्तु–विनिमय प्रणाली, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, सामुद्रिक व्यापार

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

शोध विस्तार

विदेशी व्यापार में मुद्राओं की सक्रिय भूमिका होती है। इसीलिए एक राज्य की मुद्रा दूसरे राज्य से प्राप्त होती हैं तो उन दोनों राज्यों में व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने में कठिनाई नहीं होती है। दूसरी तरफ मुद्राओं की प्राप्ति के अभाव में विदेशी व्यापार के सम्बन्ध में कोई निष्कर्ष निकालना दुष्कर होता है क्योंकि सिक्के व्यापारिक एवं पुरातात्त्विक दृष्टि से सबसे प्रामाणिक सामग्री माने जाते हैं। किन्तु इस तथ्य को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि वह मुद्राएं किसी यात्री अथवा धार्मिक प्रचारक द्वारा ले जायी गयी हो। ठीक है, इस बात को मान लिया जाय तब भी मुद्राओं की प्राप्ति से यह निष्कर्ष निकालना सरल हो जाता है कि दोनों राज्यों में किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध अवश्य था। यह सम्बन्ध चाहे जिस प्रकार भी स्थापित किया गया हो एवं उनके स्वरूप तथा उद्देश्य कुछ भी रहे हों आगे चलकर यही सम्बन्ध व्यापारिक सम्बन्ध के नये आयाम स्थापित करने के आधार बनते हैं जैसा कि वर्तमान में भी होता है। पहले राजनैतिक सम्पर्क एवं सम्बन्ध स्थापित किये जाते हैं और उसके बाद दोनों देश एक दूसरे की अर्थव्यवस्था में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं।

प्राचीन काल में व्यापार राज्य द्वारा संचालित न होकर व्यापारियों, निगमों अथवा श्रेणी संगठनों द्वारा संचालित होता था। एक राज्य के व्यापारी अपने उत्पाद को आवश्यकतानुसार दूसरे राज्य में ले जाकर वहाँ के उत्पाद से अनुमानित मूल्य के आधार पर अदला–बदली करते थे। इसके अतिरिक्त एक राज्य के व्यापारी दूसरे राज्य में जाकर अपने सामानों को उस राज्य की प्रचलित नकद मुद्राओं पर विक्रय कर देते थे तत्पश्चात् उस राज्य की मुद्राओं से वहाँ विशिष्ट वस्तुओं का क्रय कर अपने राज्य में लाकर बेच देते थे। इस प्रकार प्राचीन काल में विदेशी व्यापार में मुद्राओं की आवश्यकता नहीं होती थी।[1] पी0एल0 गुप्त का कथन है कि इसी कारण बड़ी संख्या में विदेशी मुद्राओं की प्राप्ति, विदेशी व्यापार में संलग्न राज्यों से नहीं होती है। सीमित संख्या में मुद्राओं की प्राप्ति का कारण व्यापारियों की संयोगवश छूट गयी मुद्राये हैं। यदि विदेशी व्यापार में मुद्राओं का प्रयोग होता तो बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्राएँ मिलनी चाहिए जो कि नहीं प्राप्त होती हैं। किन्तु वास्तविक स्थिति उपर्युक्त सन्दर्भ के सम्बन्ध में ग्रहण करना असहज प्रतीत होती है क्योंकि हम सभी जानते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की महत्ता को समझते हुए सर्वप्रथम कुषाण शासकों ने स्वर्ण सिक्कों का प्रचलन करवाया था जबकि इन सिक्कों का प्रयोग स्थानीय व्यापार–वाणिज्य में सीमित मात्रा में होता था। विदेशी मुद्राओं के बड़ी मात्रा में न मिलने का एक कारण विदेशी मुद्रा के संरक्षण के प्रति उदासीनता भी है। प्राचीन

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

भारतीय विदेशी व्यापार में मुद्राओं के साथ–साथ वस्तु–विनिमय प्रणाली का भी प्रयोग होता था जिसके कारण मुद्रा का प्रयोग कुछ ही वस्तुओं के क्रय–विक्रय में होता था। इसके अतिरिक्त तत्कालीन समय में विदेशी मुद्रा को गलाकर स्थानीय मुद्रा में परिवर्तित कर लिया जाता था जिसके कारण मुद्राओं की प्राप्ति सीमित हो गयी। प्लिनी के अनुसार रोम प्रतिवर्ष अपने व्यापारिक घाटे को पूरा करने के लिए बहुत बड़ी मात्रा में स्वर्ण मुद्रायें भारत को भेजता था, इस कथन से यह प्रमाणित होता है कि रोमन मुद्रायें बड़ी संख्या में भारत में आती थीं किन्तु इनको गलाकर धातु–पत्र में परिवर्तित कर लिया जाता था। अगर ऐसा नहीं होता तो प्लिनी के विवरण के अनुसार भारत में बहुत बड़ी मात्रा में रोमन स्वर्ण मुद्रायें प्राप्त होनी चाहिए, लेकिन ऐसा नहीं है। भारत में रोमन स्वर्ण सिक्कों की प्राप्ति प्लिनी के विवरणों से मेल नहीं खाती है। अतः यह कहना कि विदेशी व्यापार में मुद्राओं का कोई योगदान नहीं है, उचित नहीं प्रतीत होता है।

मुद्राओं के अलोक में भारत–रोम व्यापार को परिभाषित करने के लिए सर्वप्रथम उन विदेशी क्षेत्रों की पहचान एवं वहाँ से प्राप्त भारतीय सिक्कों का विश्लेषण करना समीचीन होगा, साथ ही उन भारतीय क्षेत्रों का भी विश्लेषण करना होगा जहाँ से विदेशी मुद्रायें प्राप्त हुई हैं।

विदेशी क्षेत्रों में प्राप्त भारतीय मुद्रायें :-

वर्तमान में जो भी पुरातात्त्विक साक्ष्य प्राप्त हुए हैं उनसे ज्ञात होता है कि भारत का बाह्य देशों से व्यापार सिन्धु–सभ्यता के समय से होता चला आ रहा है। मेसोपोटामिया के विविध स्थलों से सिन्धु सभ्यता में बनायी गयी अथवा नकल वाली लगभग 30 मुद्रायें प्राप्त हुई हैं। मुद्राओं के अतिरिक्त सोने, चाँदी तथा तांबे के आभूषण, मनके, मोती, बर्तन, लकड़ी की वस्तुयें आदि प्राप्त हुयी हैं। ये बहुसंख्यक मुद्रायें एवं वस्तुयें सिन्धु तथा मेसोपोटामिया के मध्य विकसित सम्पर्क की सूचक तो हैं ही, इनसे मेसोपोटामिया में सिन्धु सभ्यता के लोगों की बस्ती होने की सम्भावना बढ़ती है। दूसरी ओर सिन्धु सभ्यता में जो बेलनाकार मुद्रायें प्राप्त हुई हैं, वे मेसोपोटामिया में निर्मित इसी कोटि की मुद्राओं के प्रभाव में बनायी गयी प्रतीत होती हैं। मेसोपोटामिया के अतिरिक्त खाड़ी स्थित बहरीन द्वीप के साथ भी सैन्धव सभ्यता के सम्पर्क का पुरातात्त्विक प्रमाण प्राप्त है। इस द्वीप से प्राप्त कुछ मुद्राओं पर सिन्धु लिपि के चिन्ह उत्टंकित किये गये हैं। इसी प्रकार, इस द्वीप से मिलने वाली मुद्राओं के अनुकरण की कुछ मुद्रायें दक्षिणी मेसोपोटामिया तथा लोथल से प्राप्त हुई हैं। इन पुरातात्त्विक सामग्रियों के आलोक में इतिहासकारों तथा पुरातत्त्ववेत्ताओं की यह सामान्य धारणा है कि सैन्धव सभ्यता के काल में भारत तथा

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

मेसोपोटामिया के मध्य सामुद्रिक मार्ग से व्यापारिक सम्पर्क स्थापित हुआ था जिसमें बहरीन द्वीप ने दोनों संस्कृतियों के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभायी थी।

ध्यातव्य है सिन्धु सभ्यता के अवसान के बाद भी भारत का विदेशों से व्यापार का क्रम चलता रहा, इसका प्रमाण विभिन्न देशों से प्राप्त भारत की आहत मुद्रायें हैं। सूरसेन जनपद की कुछ रजत की आहत मुद्रायें श्रीलंका से प्राप्त हुई हैं जो कोलम्बो संग्रहालय में सुरक्षित है।[2] सम्राट अशोक के काल से भारत और श्रीलंका के मध्य व्यापारिक सम्बन्ध रहे हैं। अशोक के अभिलेखों में प्रत्यन्त राज्य के रूप में आतम्बपणि का उल्लेख हुआ है।[3] अनेक जातक कथाओं में व्यापारियों के भृगुकच्छ से सुवर्ण भूमि जाने का उल्लेख मिलता है। चौथी शताब्दी ई0पू0 के यूनानी विजेता सिकन्दर के नाविक आनिसिक्राइट्स ने सिन्धु नदी में यात्रा करते समय सिन्धु घाटी के निवासियों से तांबपण्णी के विषय में सुना था।[4] उस काल में भारत के पश्चिम क्षेत्र से और दक्षिण पूर्व एशिया के देशों के साथ समुद्री व्यापार अधिक होता था। वस्तुतः अरब सागर के तटीय क्षेत्रों से हिन्द महासागर की सामुद्रिक यात्रा का आरम्भ हुआ था।[5] सूरसेन जनपद की जो मुद्रा श्रीलंका से प्राप्त हुई है उसका काल छठी शताब्दी ई0पू0 से चतुर्थ शती ई0 पू0 के मध्य का है जो सम्राट अशोक से पूर्व भारत–श्रीलंका सम्बन्ध का सूचक है।[6] इस मुद्रा की प्राप्ति सम्राट अशोक के पूर्व भारत और श्रीलंका के मध्य व्यापारिक सम्बन्ध की सम्भावना को संकेतित करता है।

अफगानिस्तान में काबुल के चमन हूजरी नामक स्थान से एक मुद्रा–निधि प्राप्त हुई है जिसमें मगध जनपद की आहत मुद्रा तथा गांधार की शलाका मुद्रा के साथ यवन एवं हखामनी मुद्राओं की भी प्राप्ति हुई है। इस मुद्रा–निधि का काल छठी शताब्दी ई0पू0 से चतुर्थ शताब्दी ई0पू0 के मध्य निर्धारित किया गया है। मुद्रा–निधि की प्रकृति से अनुमान होता है कि यह अन्तर देशीय व्यापार में संलग्न किसी व्यापारी की निधि रही होगी। ऐसा प्रतीत होता है कि अफगानिस्तान एक ऐसा व्यापारिक केन्द्र था जहाँ विभिन्न क्षेत्र के व्यापारी आते थे।

विदेशों से सिक्के प्राप्ति के क्रम में इथियोपिया के देब्रो–डोम्मो नामक स्थल से 103 कुषाण स्वर्ण मुद्रायें प्राप्त हुई हैं जिनमें 5 विम कडफिसेस की, 5 कनिष्क की, 88 हुविष्क की एवं 5 वासुदेव की थी।[7] भारत के बाहर प्राप्त होने वाली भारतीय मुद्राओं की यह सबसे बड़ी निधि है। इस मुद्रा–निधि से ईसवी सन् के आस–पास की शताब्दियों में इथोपिया के साथ भारत के व्यापारिक सम्बन्धों की पुष्टि होती है। 'पेरिप्लस आफ द

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

इरिथ्रियन सी' नामक ग्रन्थ में इस बात का उल्लेख है कि इथोपिया स्वर्ण, मोती, एवं दासों के बदले भारत से छपाई युक्त सूती वस्त्र एवं लोहा प्राप्त करता था।[8]

इसके अतिरिक्त मैक्रिण्डल ने लिखा है कि सोपारा प्राचीन काल से ही व्यापार का केन्द्र था। पेरिप्लस और टॉलमी के भूगोल में बेरिगाजा का अनेक बार उल्लेख हुआ है। यह भारत के पश्चिमी समुद्र तट पर रोम के साथ व्यापार का प्रसिद्ध पत्तन था।[9]

भारतीय क्षेत्र से प्राप्त होने वाली विदेशी मुद्रायें :-

प्राचीन काल में विदेशी व्यापार के क्रम में भारत के अनेक क्षेत्रों से विदेशी मुद्रायें प्राप्त हुई हैं। ये मुद्रायें भारत की उन्नत व्यापारिक आर्थिक स्थिति को बताती है। भारतीय परिक्षेत्र में सर्वाधिक संख्या में रोमन मुद्रायें प्राप्त हुई हैं। इनमें भी अधिकांश दक्षिण भारत से प्राप्त हुई हैं। विदेशी मुद्राओं का सर्वाधिक संख्या में दक्षिण भारत से पाया जाना यह दर्शाता है कि उत्तरी भारत के स्थल मार्ग द्वारा विदेशी व्यापार की तुलना में दक्षिण भारत के समुद्री मार्ग द्वारा अधिक विदेशी व्यापार सम्पादित किया जाता था। दूसरे दक्षिण भारत की भौगोलिक स्थिति भी समुद्री मार्ग द्वारा व्यापार के अनुकूल थी एवं स्थल मार्ग की तुलना में जलमार्ग द्वारा व्यापार करना ज्यादा लाभकारी होता था। इसी कारण दक्षिण भारत से सर्वाधिक संख्या में विदेशी मुद्रायें प्राप्त होती हैं।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों से विदेशी मुद्राओं की प्राप्ति हुयी है जिनमें मद्रास क्षेत्र से 26, केरल से 2, मैसूर से 3, आन्ध्र प्रदेश से 17, महाराष्ट्र से 2, गुजरात से 1, मध्य प्रदेश से 4, उड़ीसा से 1, बिहार से 1, उत्तर–प्रदेश से 3, पाकिस्तान तथा सीमावर्ती क्षेत्रों से 5 निधियाँ उपलब्ध हुई हैं। उत्तर भारत से स्वर्ण मुद्राओं के कम प्राप्त होने के पीछे कारण यह था कि कुषाण इन मुद्राओं को गला देते थे और अपनी मुद्रा में परिवर्तित कर लेते थे। भारतीय परिक्षेत्र में बड़ी मात्रा में औरेय मुद्राओं की प्राप्ति संकेत करता है कि भारत–रोम व्यापार का संतुलन भारत के पक्ष में था। ऐसा प्रतीत होता है कि रोम के पास भारतीय उत्पाद को आयात करने के बदले निर्यात करने की क्षमता कम थी जिसकी पूर्ति वह स्वर्ण एवं रजत की मुद्राओं द्वारा करता था। इस तथ्य की पुष्टि टाइबेरियस एवं प्लिनी के विवरणों से भी होती है। प्लिनी के अनुसार रोम प्रतिवर्ष 550,000,000 सेस्टर्स भारतीय उत्पाद के बदले भारत भेजता था।[10]

उल्लेखनीय है कि भारत में प्राप्त रोम की स्वर्ण मुद्राओं की निधियाँ न केवल भारत–रोम व्यापार का संतुलन भारत के पक्ष में बताती है वरन् व्यापार के विकास के चरणों, उत्कर्ष एवं ह्रास को भी उद्घाटित करती है। प्लिनी के अनुसार आगस्टस के काल में भारतीय राजदूत रोम गयें एवं सन्धि के उपरान्त उन्होंने भेंट में अन्य अनेक

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

वस्तुओं के अतिरिक्त व्याघ्र एवं अन्य पशु रोमन शासक को दिए जिन्हें रोमवासियों ने इसके पूर्व कभी नहीं देखा था। फ्लोरस के अनुसार ट्राजन के समय (98–117 ई0) में अनेक राजदूत रोम आये थे[11] जिनमें अधिकांश भारतीय थे। इस व्यापारिक सम्बन्ध के पश्चात भारतीयों को बड़ी मात्रा में स्वर्ण प्राप्त हुआ। प्रारम्भ में रोम तथा भारत के बीच व्यापार प्रत्यक्ष रूप में नहीं होता था अपितु अदन और अलेक्जेण्ड्रिया (सिकन्दरिया) के बंदरगाहों तक ही भारतीय जहाज पहुँचते थे और वहां से मिस्र के लोग उनके माल को स्वयं अपने जहाजों में रोम तक पहुँचाते थे। इसी समय चीन का भी रोम के साथ व्यापार स्थल मार्ग के द्वारा होता था। यह मार्ग भारत के उत्तर–पश्चिम में हिन्दुकुश के दक्षिण से होकर गुजरता था। इस मार्ग को सिल्क रूट (रेशम मार्ग) के नाम से जाना जाता था। इस रेशम मार्ग पर कुषाण भारी मात्रा में कर लगाते थे जिसके परिणामस्वरुप कर के रूप में कुषाण भारी मात्रा में स्वर्ण और रजत प्राप्त करते थे।

हिप्पोलस द्वारा 47 ई0 में मानसूनी हवाओं की खोज से समुद्री व्यापार में तीव्र बृद्धि हो गयी। पेरिप्लस[12] के अनुसार इन हवाओं की जानकारी के बाद लाल सागर के मुहाने पर स्थित ओकेलिस नामक बंदरगाह से चलकर जहाज सीधे बीच समुद्र से होते हुये केवल 40 दिनों में मुजरिस (मालाबार तट पर कंगानूर) अथवा भारत के पश्चिमी तट के अन्य बंदरगाहों पर पहुँचने लगे, उधर रोम में एक साम्राज्य की स्थापना से भी भारत–रोम व्यापार में बृद्धि हुयी जिसके फलस्वरुप रोम की अपेक्षा भारत का व्यापारिक लाभ दस गुना बढ़ गया। प्लिनी रोम की अर्थव्यवस्था पर चिंता व्यक्त करते हुए कहता है कि लगभग 55 करोड़ सेस्टर्स (दो लाख बीस हजार पाउण्ड) की स्वर्ण मुद्रायें, रोम के व्यापारिक घाटे को पूरा करने के लिए भारत भेजी जा रही हैं[13] और रोम का स्वर्ण भण्डार पूर्व देशों से विलासिता की वस्तुओं के आयात पर खर्च किया जा रहा है।[14] इस कथन का समर्थन भारत के दक्षिणी भागों (विशेषतः अरिकामेडु) से प्राप्त होने वाले उन स्वर्ण सिक्कों से होती है जिन्हें आगस्टस और नीरो नामक रोमन शासकों ने मुद्रित कराया था। पेरिप्लस के विवरण से पता चलता है कि स्वर्ण और रजत बेरिगाजा बंदरगाह से आयात किया जाता था।

भारत का रोम के साथ व्यापार सम्राट आगस्टस के काल में जो कोयम्बटूर, मद्रास एवं चित्तलदुर्ग तक सीमित था। टाइबेरियस के काल में व्यापार का अभूतपूर्व विस्तार हुआ, जो पश्चिमी पयोधि से लेकर पूर्वी पयोधि तक तथा उत्तर में करीमनगर तक फैल गया। व्यापार का यह उत्कर्ष क्लाडियस (41–54 ई0) एवं नीरो के काल (54–68 ई0) तक बना रहा।

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

सम्राट वेस्पेसियन (69–79ई0), नर्वा (96–98 ई0) एवं टार्जन (98–117 ई0) की मुद्रायें अल्पसंख्या में प्राप्त हुई हैं जिससे अनुमान होता है कि नीरो के पश्चात् रोम के साथ होने वाले व्यापार में कमी आ गयी थी। उपर्युक्त तथ्यों एवं साहित्यिक स्रोतों से विदित होता है कि ईसवी सन् के आस–पास सम्पूर्ण दक्षिण भारत रोम के व्यापारियों का स्वर्ग बना हुआ था। रोम व्यापारियों के आवागेमन का प्रमुख केन्द्र पश्चिमी तट पर मालाबार एवं पूर्वी तट पर कोयम्बटूर था।[15] संगमयुग के तमिल साहित्य से भी इस बात की पुष्टि होती है जिसमें मामल्लपुरम , पुहार और कई अन्य बंदरगाहों पर कर्कश बोली बोलने वाले यवनों का उल्लेख है।[16] सर्वाधिक मुद्रायें कोयम्बटूर क्षेत्र से उपलब्ध हुई हैं जहाँ वैदूर्य की खानें थीं यहाँ से निकलने वाले हरे रंग के वैदूर्य की माँग रोम में बहुत थीं। षटकोणीय हरे रंग के वैदूर्य को रोमवासी मुँहमांगे कीमतों पर खरीदते थे।

द्वितीय शताब्दी ई0 में मालावार तट से औरेय की प्राप्ति नहीं हुई है। रोमन मुद्राओं की केवल दो छोटी मुद्रा–निधिया कोरोमण्डल क्षेत्र से प्राप्त हुई हैं। इसके विपरीत दस मुद्रा–निधियां आन्ध्र प्रदेश से एवं तीन गुजरात तथा दो महाराष्ट्र क्षेत्र से भी प्राप्त हुई हैं। इन तथ्यों के विश्लेषण से पता चलता है कि रोम–व्यापार चोल क्षेत्र से खिसक कर आन्ध्र प्रदेश में चला गया था। आन्ध्र क्षेत्र रोमन व्यापारियों के लिए आकर्षण का केन्द्र टाइबेरियस के काल से अन्टोनिनस के काल तक बना रहा। रोम के जहाजों का लंगर उत्तरी कोरोमण्डल तट, सोपारा एवं भड़ौच के बंदरगाहों पर लगने लगा था। सम्राट अन्टोनिनस के पश्चात् केवल सेप्टिमस सेवेरस (93–211 ई0) की दो मुद्रा–निधियाँ प्राप्त हुई हैं। इस प्रकार रोमन मुद्राओं की प्राप्ति से निष्कर्ष निकलता है कि आन्ध्र प्रदेश से रोम का व्यापार तृतीय शताब्दी ई0 तक चलता रहा।

यहाँ यह अवधेय है कि गंगा घाटी–मथुरा, इलाहाबाद एवं मिर्जापुर से प्राप्त रोमन स्वर्ण मुद्राओं की निधियाँ मुद्रा शास्त्रियों एवं इतिहासकारों के लिए पहेली बनी हुई हैं। बिहार के सिंहभूमि से भी औरेय की प्राप्ति हुई है। पूर्वी घाट के प्रसिद्ध बंदरगाह ताम्रलिप्ति में रोमन व्यापारियों का व्यापारिक संबंध था। ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्वी घाट का बंदरगाह ताम्रलिप्ति एवं पश्चिमी घाट का बंदरगाह भड़ौच आन्तरिक स्थल मार्ग से, बिचौलिए व्यापारियों द्वारा सिंहभूमि, उज्जयिनी, मथुरा, कौशाम्बी एवं मिर्जापुर आदि स्थलों से जुड़ा हुआ था। उज्जयिनी से रोमन मुद्राओं के अतिरिक्त आगस्टस का छवियुक्त मिट्टी का साँचा प्राप्त हुआ है। यहाँ के उत्खनन से आगेट एवं चाल्सेडनी के बने अर्द्ध–निर्मित मनके उपलब्ध हुए हैं जो **'पेरिप्लस ऑफ द इरिथ्रियन सी'** के कथन की पुष्टि करते हैं कि यहाँ पर पश्चिम से भड़ौच के रास्ते कीमती पत्थर आयात करके उनसे

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

मनके वाली माला तैयार की जाती थी। इस प्रकार उज्जयिनी उत्तर भारत के महत्वपूर्ण इम्पोरियम के रूप में विकसित था।[17] यहाँ से लौह एवं अस्थि निर्मित वस्तुओं की कार्यशालायें भी प्राप्त हुई हैं।

दक्षिण भारत से बहुत सी रोमन मुद्रा–निधियाँ प्राप्त हुई हैं, जबकि उत्तर भारत से अत्यन्त अल्प संख्या में प्राप्त हुई हैं। इतिहासकारों द्वारा इसका कारण कुषाण सम्राटों द्वारा रोमन स्वर्ण मुद्राओं को गलाकर अपनी स्वर्ण मुद्राओं में परिवर्तित कर देना बताया गया है।[18] इतिहासकारों का यह मानना तर्कसंगत भी है। कुषाणों का रोम के साथ व्यापारिक सम्बन्ध था। कुषाण शासकों ने अपनी स्वर्ण मुद्राओं का निर्माण रोम की मुद्रा–प्रणाली के अनुकरण पर किया था। कुषाण स्वर्ण मुद्राओं के पुरोभाग पर राजा की छवि का अंकन रोमन सम्राटों की भाँति दैवीय एवं अति मानवीय रूप से हुई है।[19] विम कडफिसेस ने अपनी बग्गी–प्रकार की मुद्रा का निर्माण आगस्टस की बग्गी प्रकार की मुद्रा का अनुकरण करते हुए कराया था अतः यह प्रमाणित होता है कि कुषाण शासकों का व्यापारिक सम्बन्ध रोमन सम्राटों से काफी घनिष्ठ था।

उल्लेख्य है कि तक्षशिला से टाइबेरियस की केवल एक मुद्रा उपलब्ध हुई है। मणिक्याला से खराब दशा में कतिपय मुद्रायें कुषाण मुद्राओं के साथ प्राप्त हुई हैं। इस सम्बन्ध में परमेश्वरी लाल गुप्त का मत है कि गांधार एवं अफगानिस्तान मध्यवर्ती व्यापारिक केन्द्र थे जहाँ रोम, अरब एवं भारत के व्यापारी मूल्य संतुलन के आधार पर अपने–अपने वस्तुओं का आदान–प्रदान करते थे।[20] यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि एक देश की मुद्रा का मूल्य दूसरे देश में वही नहीं रह जाता। रोम की मुद्रा भी भारत में स्वर्ण–खण्ड की तरह थी। यह एक रोचक तथ्य है कि स्वर्ण एवं रजत की रोमन मुद्राओं के पुरोभाग पर सम्राट के सिरो भाग पर पुनर्मुद्रण अथवा कटे का निशान है, जिसके कारण शासक की पहचान करना कठिन हो जाता है। इससे यह संकेत मिलता है कि इसका प्रयोग व्यापारियों द्वारा बुलियन के रूप में किया जाता था। इसी प्रकार के बुलियन का उल्लेख नहपान के नासिक अभिलेख में हुआ है।[21] आभिलेखिक सन्दर्भों के अनुसार स्वर्ण एवं रजत कार्षापण का अनुपात प्रथम, द्वितीय शताब्दी ईसवी में 1 और 28.58 के लगभग था। नागार्जुनी कोण्डा के एक अभिलेख में 'दीनारी–माषक' नामक मुद्रा का उल्लेख मिलता है जो ऐसी स्थानीय मुद्रा को दर्शाता है जो रोम की रजत मुद्रा से परिवर्तनीय हो।[22] अतः इससे प्रमाणित होता है कि रोम की मुद्राओं को पुनर्टंकित कर उन्हें स्थानीय मुद्राओं में परिवर्तित कर देश में प्रवर्तनीय बना दिया जाता था।

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

अतः इन सिक्कों के प्राप्ति स्थल से यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत का प्राचीन समय में अन्य देशों के साथ व्यापार–वाणिज्य होता रहा। भारत का विदेशी व्यापार सिंधु सभ्यता के समय से प्रारम्भ होकर प्रथम शती ई0 के आते–आते काफी समृद्ध हो गया था। विदेशी व्यापार किसी भी देश की अर्थव्यवस्था की स्थिति को बताते हैं। आयात की तुलना में निर्यात का अधिक होना निश्चय ही किसी भी देश की उन्नत अर्थव्यवस्था को सूचित करता है। निर्यात की अधिकता ही किसी भी देश के लिए विदेशी मुद्रा प्राप्त करने का एक प्रमुख माध्यम है। विदेशी सिक्कों की वृहत स्तर पर भारत में प्राप्ति यह दर्शाता है कि तत्कालीन समय में भारत का विदेशी व्यापार भारत के पक्ष में था, जो भारत की समृद्धि का संकेत करते हैं। इस प्रकार रोमन देशों की स्वर्ण मुद्रायें व्यापार के संतुलन के निमित्त भारत की ओर प्रवाहित होती थीं।

सन्दर्भ-

1. गुप्त, परमेश्वरी लाल, इण्डियाज फारेन ट्रेड एण्ड दी क्वायन्स, मेमोरियल सीरीज नं0 6, क्वायन्स एण्ड अर्ली इण्डियन इकोनॉमी।
2. कैटलॉग ऑफ कोलम्बो संग्रहालय।
3. द्वितीय शिलालेख (गिरनार संस्करण) एवमपि प्रचंतेषु यथा चोडापाडा सतियपुतो केरलपुतो आतंबपंणी।
4. गोयल, श्रीराम, प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, पृ0 38।
5. कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग–1, पृ0 424।
6. पणिक्कर, के0एम0, इण्डिया एण्ड द इण्डियन ओशन, पृ0 23।
7. गुप्त, परमेश्वरी लाल, तत्रैव।
8. आर्कियोलाजिया, आक्सफोर्ड XCVII, पृ0 51, ए मोर्डिनी, अली ओरेई कुषाण डेन कन्वेन्टो दि डेब्रा डेम्पो, प्रोसीडिंग ऑफ द इण्टरनेशनल कांग्रेस ऑफ इथोपिक स्टडीज, 1960, जर्नल न्यूमिसमेटिक सोसायटी ऑफ इण्डिया, ग्ग्प, पृ0 19–25।
9. 'दि पेरिप्लस आफ दि इरिथ्रियन सी', पृ0 24, फुटनोट 4।
10. स्कॉफ, डब्ल्यू एच0, 'द पेरिप्लस ऑफ दि इरिथ्रियन सी' (अंग्रेजी अनुवाद), पृ0 27, 30, 32, 34 एवं 36 आदि।
11. कनिंघम, क्वायन्स ऑफ एंशेन्ट इण्डिया, पृ0 50।
12. मैक्रिण्डल, एंशेन्ट इण्डिया, पृ0–212, 213।
13. स्कॉफ का अनुवाद, पृ0–45।

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

14. कनिंघम, क्वायन्स आफ एंशेन्ट इण्डिया, पृ0—50।
15. स्कॉफ, तत्रैव, पृ0—219।
16. बुलेटिन ऑफ द मद्रास गवर्नमेंट म्यूजियम, वाल्यूम प्प, नं0 1, पृ0 1।
17. द एज ऑफ इम्पिरियल यूनिटि, पृ0 603।
18. इण्डियन आर्कियोलाजी, ए रिव्यू, 1956—57, पृ0 20, 1957—58।
19. रैप्सन, इण्डियन क्वायन्स, पृ0 123।
20. मुखर्जी, बी0एन0, इकोनॉमिक फैक्टर्स इन कुषाण हिस्ट्री, व्हीलर, एम0, रोम बियाण्ड दि इम्पीरियल फ्रण्टियर।
21. गुप्त, परमेश्वरी लाल, इण्डियाज फारेन ट्रेड एण्ड दि 'क्वायन्स, मेमोरियल सीरिज नं0 6, क्वायन्स एण्ड अर्ली इण्डियन इकोनामी।
22. गुप्त, परमेश्वरी लाल, भारत के प्रमुख अभिलेख, भाग—1, पृ0 196।
23. मुखर्जी, बी0एन0, दि इण्डियन गोल्ड, एण्ड इण्ट्रोडक्शन टू दि कैबिनेट ऑफ दि गोल्ड क्वायन्स इन दि इण्डियन म्यूजियम, पृ0 14।

WRITERS VIEW
An Interdisciplinary, bilingual, bi-annual, a peer review or refereed, Indexed & Open Accesses International Research Journal
Vol. 5 No. 2 VIJAYADASHMI, Vikram Samvat 2077 Year 2(
ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

उत्तराखण्ड़ में कृषि का विविधिकरण एक आर्थिक सूक्ष्म विश्लेषण

डॉ. महेश कुमार

शोध सारांश

कृषि विविधिकरण आर्थिक विकास के आवश्यक घटकों में से एक है। यह वह चरण है जहां पारंपरिक कृषि उत्पाद मिश्रण को उच्च मानक उत्पादों में स्थानांतरित करके पारंपरिक कृषि को एक गतिशील और वाणिज्यिक क्षेत्र में बदल दिया जाता है, जिसमें उत्पादन दर को उत्तेजित करने की उच्च क्षमता होती है। उत्तराखण्ड हिमालय एक पारंपरिक कृषि समाज का प्रतिनिधित्व करता है, जहां 74 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या अपनी जीविका चलाने के लिए अनाज, फसलों की खेती पर निर्भर करती है। समय के साथ–साथ, मानव जनसंख्या में वृद्वि और प्रति व्यक्ति भूमि में कमी के साथ, पारंपरिक निर्वाह कृषि खाद्य आवश्यकता को पूरा नहीं कर सका है। हिमालय का पर्वतीय क्षेत्र साधारणतः अर्द्व विकसित है। इस क्षेत्र के आर्थिक कार्यक्रमों के फलस्वरूप कुछ प्रगति हुई है इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता परन्तु हिमालय क्षेत्र में परिस्थितियों की निम्न दशा का मुख्य कारण निर्धनता और बेरोजगारी है। क्षेत्र की विषम स्थलाकृति, विरल जनसंख्या अधिकतम पहुॅच से बाहर दूर–दूर तक फैले हुये छोटे–छोटे गांव, पथरीली भूमि और वर्षा से सिंचित सीमित क्षेत्र, कृषिकृत अर्थव्यवस्था पुरूषों का परदेश में बसना, महिलाओं का कृषि के प्रति जिम्मेदार होना आधुनिक उन्नति आदानों के साथ न्यून सिंचाई निम्न उत्पादकता को बरकरार रखते हैं। यातायात व संचार सांधनों की कमी, उचित मार्केटिंग का क्रेडिट संगठन का अभाव आदि की अपनी विशेष समस्यायें हैं। राज्य में साधारणतः सिंचाई, सड़कें, बाजार, औद्योगिक वातावरण, संस्थात्मक विनत आदि अधः संरचनात्मक सुविधाओं की कमी है।

बीज शब्द

आर्थिक विकास, कृषि विविधिकरण, जनसंख्या, औद्योगिक वातावरण, अर्थव्यवस्था।

असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, एस. जी. आर. आर पी.जी. कॉलेज, देहरादून

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

शोध विस्तार

हाल के वर्षो में कृषि का विविधीकरण एक रणनीति के रूप में नवीन वर्षो से देश में बनी योजनाओं को ध्यान में रखते हुये महत्वपूर्ण विकसित लक्ष्य प्राप्त कर चुका है। यह रणनीति आर्थिक पर्यावरण में बदलाव के कारण कृषि क्षेत्र के उत्पादन कार्यों को बदलने और बढती बेरोजगारी और प्राकृतिक संसाधनों की निम्न अवस्था की चुनोतियों का सामना करने में सहायक सिद्व हो रही है। इस रणनीति का विस्तृत उद्देश्य कृषि और अन्य क्षेत्रों में रोजगार वृद्वि के द्वारा प्रति व्यक्ति आय को ऊपर उठाना है जिससे आर्थिक विकास की नींव को विस्तृत और स्थायित्व प्रदान किया जा सके।

अध्ययन का उद्देश्य :– उत्तराखण्ड में कृषि के विविधीकरण का अध्ययन मुख्यतः निम्नलिखित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया गया है।

1. उपयोग भूमि व्यय का संभावित प्रयोगात्मक मूल्य निरूपण और बढ़ती बेरोजगारी और बढ़ती हुई आय से जुडे बदलाव।
2. प्रभावित कृषि विविधिकरण और अधःसंरचनात्मक तथा संस्थात्मक, विविधता पर आधारित आर्थिक तथ्यों के प्रथकत्व के संमघात का अध्ययन।
3. कृषि और कृषि से जुडे कार्यो के प्रयोग का प्रत्येक जिले का विश्लेषण और विभिन्न कार्यो द्वारा आय और रोजगार को बढ़ाने के क्षेत्र का अध्ययन।
4. बढ़ती हुई कृषि विविधिकरण में अधःसंरचनात्मक, संस्थात्मक, और सामाजिक आर्थिक तथ्यों के महत्व का अध्ययन।
5. कृषि विविधिकरण की रणनीति के लिए बढ़ते हुए रोजगार, आय बढ़ोत्तरी और जीवन का सहारा देने वाले संसाधनों से प्राप्त लक्ष्यों के उद्देश्य।

सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण :– भारत के आर्थिक विकास में कृषि विविधिकरण की क्षेत्रीय विविधताओं हेतु अनेक अर्थशास्त्रिओं एवं शोधकर्ताओं ने अध्ययन किये, जिनमें कुछ प्रमुख अध्ययन निम्न हैं।

एल0 पी0 भारती और एल0 आर0 शर्मा (1990) ने पहाड़ी क्षेत्रों में आलेखित विकसित संभागों के लिए स्थानीय विकास योजना और एक सिद्वान्त की आवश्यकता, हिमाचल प्रदेश के अध्ययन पर आधारित तर्क द्वारा परीक्षण कर रहा है। प्रत्येक संभागों में गांव का एक समूह अध्ययन के लिए चुन गया है परिवार की एक सूची प्रत्येक समूह के लिए सम्भावनायें और 60 परिवारों का प्रतिरूप देवयोग से चयनित है, विभिन्न आकार समूहों जोत के आंकडे 1997–98 से सम्बन्धित हैं, जो व्यक्तिगत साक्षात्कार विधि द्वारा निर्माण अनुसूची को प्राप्त करते हैं।

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

शर्मा (2005) हिमाचल प्रदेश राज्य के लिए, अध्ययन ने पिछले तीन दशकों के दौरान राज्य में कृषि में काफी उच्च विकास दर का संकेत दिया और बागवानी क्षेत्र और फलों के उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि के साथ प्रमुख था।

कलमाकर (2009) ने भारत में शहरीकरण और कृषि विकास के बीच संबंधों का विश्लेषण किया और पाया कि कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है क्योंकि रोजगार और आजीविका निर्माण में इसकी उच्च हिस्सेदारी रही है।

कन्नन और सुंदरम (2011) ने भारत में राष्ट्रीय स्तरों पर कृषि विकास में रूझान और पैटर्न का अध्ययन किया। अध्ययन ने 1967–68 से 2007–2008 की अवधि के लिए आंकडों पर विचार किया और संकेत दिया कि देश में फसल के पैटर्न में समय के साथ महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं।

मिनेद्रा (2012) द्वारा किए गए अध्ययन ने भारत में छोटी जोत की भूमिकाओं और चुनौतियों की जांच की, इसमें कृषि के विकास, खेती के पैटर्न छोटे धारकों की भागीदारी, छोटे धारकों की उत्पादकता प्रदर्शन, मूल्य श्रंखलाओं के साथ छोटे धारकों को बाजार से जोडने के प्रभाव, खाद्य सुरक्षा और रोजगार सृजन बढाने में छोटे धारकों की भूमिका जैसे कृषि के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण किया गया।

शोध प्रविधि :–

द्वितीयक समंक संकलन :

- विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख।
- कृषि पर आधारित विभिन्न शोधकर्ताओं की रिपोर्ट।
- कृषि पर आधारित पुस्तकें, समाचार पत्र, वेबासाइट आदि।
- उत्तराखण्ड़ सरकार द्वारा प्रेषित वार्षिक प्रतिवेदन।

कृषि का विविधिकरण एक सूक्ष्म विश्लेषण :– वर्तमान समय में एशिया में दक्षिण एवं मध्य पूर्व एशिया तथा उत्तरी अफ्रीकी नीति निर्माता कृषि के विकास हेतु कृषि विविधीकरण की ओर अपना ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं। विगत दो दशकों में भारत के कुछ राज्यों जैसे – पंजाब हरियाणा में कृषि विविधिकरण को अपनाने के उपरान्त शुद्व राट्रीय घरेलू उत्पाद में 4.00 से 4.50 की वृद्वि हुई है। यद्यपि अन्य राज्यों जैसे– बिहार, असम, जम्मू कश्मीर, तमिलनाडू, उडीसा और हिमांचल प्रदेश में जहां कृषि के विविधिकरण का निम्न दशा को अपनाया है वहॉ तुलनात्मक रूप से शुद्व राष्ट्रीय घरेलू उत्पाद में कमी को प्रदर्शित करते हैं।

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

देश में भौगोलिक दृष्टि से विभिन्नता के कारण मिट्टी, वर्षा, तापक्रम, सतही पानी की उपलब्धि की दृष्टि से अन्तर बहुत अधिक है इस कारण एक राज्य के कुछ जिलों के लिये उपर्युक्त कार्यक्रम, अन्य राज्य की दृष्टि से बिल्कुल अनउपयुक्त हो सकता है। वर्षा को ही लीजिये जहॉ बंगाल, असम, मेघालय आदि राज्यों में वर्षा थोडी है कुछ क्षेत्रों की जलरोध और भूमि की सतह पर क्षार एकत्रित हो जाने की समस्या है। परन्तु अनेक क्षेत्र ऐसे भी हैं जहॉ ऐसी समस्यायें नहीं हैं। सम्पूर्ण भारत में नाइट्रोजन की कमी है और फास्फेट पोटाश की तत्व समान नहीं हैं। प्रायः एक ही गांव में कम अधिक उपजाऊ भूमि देखने को मिलती है इतना ही नहीं विभिन्न राज्यों के उत्पादन सम्बन्ध अलग–अलग हैं। इसी प्रकार जोतों के आकार तथा उनके उपविभाजन व उपखण्डन की दृष्टि से भी क्षेत्रीय विविधता है।

इस प्रकार कृषि के विविधिकरण के लिये दिये हुए विविध क्षेत्रीय प्रकारों की रणनीति सारे देश के लिये उचित नहीं हो सकती। इसलिये राज्य के लिये एक विशेष रणनीति की आवश्यकता है जो क्षेत्रीय विशेषताओं पर आधारित हो। भारतीय अवव्यिवस्था वर्ग और क्षेत्र पर आधारित है भारत को प्राथमिक मण्डलों के प्रकार के आधार पर पांच प्राथमिक या प्राकृतिक क्षेत्रों में बांटा गया है। (1) हिमालय और उसके संयुक्त पहाड (2) उत्तर का मैदान (3) प्रायदीप का पठार और पहाड (4) पर्वतीय मैदान (5)पश्चिमी तटीय मैदान

देश के हिमालय क्षेत्र के इन पांच मण्डलों में 21 प्रतिशत कुल भौगोलिक क्षेत्र और 9 प्रतिशत देश की कुल जनसंख्या स्थापित है। हिमालय क्षेत्र निम्न जीवन को सहारा देने वाली पद्वति और प्राकृतिक संसाधनों को जकडे हुये है। राज्य में जीविका वृति के अतिरिक्त मैदानी जनसंख्या का एक बडा भाग पर्वतीय संसाधनों पर निर्भर है। हिमालय की सभी प्रमुख नदियां बहुत तेज धारा से प्रवाहित होती है जिस कारण सभी मुख्य नदियां गहरी घाटियां बनाती हुई मैदानी क्षेत्रों में कृषि के लिये जीवन रेखा का कार्य करती है।

हिमालय क्षेत्र के बड़ते हुये महत्व के अनुसार असमान्य कठिनाईयों के लिये पहाड़ी क्षेत्र के विकास ने अलग अध्याय की व्यवस्था की है। जिसे सातवीं पंचवर्षीय योजना में आर्थिक पूर्वावस्था की प्रगति आर्थिक विकास और आर्थिक सुरक्षा के साथ लागू किया है। आठवीं पंचवर्षीय योजना में पहाडी क्षेत्र के विकास के उद्देश्यों को दोहराया गया है जहॉ सामाजिक आर्थिक विकास और परिस्थितिकी विकास के साथ लोग रह रहे हैं।

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

भारत में लगभग 13 पहाडी राज्य हैं जिसमें उत्तराखण्ड अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति तथा विशेष समस्याओं के कारण आर्थिक एवं औद्योगिक दृष्टि से यह राज्य देश के अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक पिछडा हुआ है। इस क्षेत्र में कार्यशील जनसंख्या का मुख्य व्यवसाय कृषि है। कृषि जीविका का एक मात्र साधन होने के कारण निर्धनता की स्थिति है। कृषि उत्पादन की दृष्टि से भूमि मानसून पर निर्भर है। देहरादून तराई, भावर को छोड़कर सिंचित क्षेत्र नगण्य ही समझना चाहिये। यह भूमि ढालू तथा सीढ़ीदार होने के कारण लागत अधिक तथा लाभदायक कम है, कृषि भूमि की उत्पादकता कम है। अतः उत्तराखण्ड की कृषि भूमि यहां के निवासियों को भर पेट भोजन देने में असमर्थ है।

उत्तराखण्ड की भौगोलिक एवं प्रशासनिक सीमा के अन्तर्गत गढ़वाल तथा कुमायु मण्डल है। गढ़वाल मण्डल के अन्तर्गत 7 जिले यथा– देहरादून, टिहरी गढ़वाल, पौडी गढ़वाल, चमोली, उत्तरकाशी, रूद्रप्रयाग, हरिद्वार तथा कुमायूं मण्डल के अर्न्तगत 6 जिले यथा– नैनीताल, अल्मोडा, पिथोरागढ़, बागेश्वर, चम्पावत उद्यमसिंह नगर सम्मिलित हैं। उत्तराखण्ड हिमालय के केन्द्रीय सम्भाग में स्थित है। पहाड़ के तलहटी में उद्यमसिंह नगर तथा देहरादून के तराई व भावर क्षेत्र हैं। हिमालय से लगा सीमान्त क्षेत्र अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति तथा विभिन्न भौगोलिक समस्याओं के कारण मैदानी क्षेत्रों से सर्वथा भिन्न है।

उत्तराखण्ड हिमालय 28′43′ उत्तरी अक्षांश से 31′27′ उत्तरी अक्षांश तक तथा 77′34′ पूर्वी देशान्तर से 81′02′ देशानतर के मध्य स्थित है। उत्तराखण्ड की उत्तरी सीमा भारत के तिब्बत से लगी हुयी अन्तर्राष्ट्रीय सीमा है। पूर्व में काली शारदा नदियां इसे नेपाल से पृथक करती हैं तथा पश्चिम में टौंस तथा यमुना नदी हिमाचल प्रदेश तथा उत्तराखण्ड की सीमा रेखा है। उत्तराखण्ड का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 53483 वर्ग कि0मी0 है जो उत्तर प्रदेश के क्षेत्रफल का 17.4 प्रतिशत है।

वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार इस क्षेत्र की जनसंख्या 100.86 लाख है, जिसमें 30.50 प्रतिशत जनसंख्या नगरीय तथा 70.37 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण है। उत्तराखण्ड़ में जनसंख्या का घनत्व 189 व्यक्ति प्रति वर्ग कि0मी0 है। क्षेत्र में लिंगानुपात के अन्तर्गत 1000 पुरूषों के अनुपात में 963 महिलायें हैं, तथा साक्षरता दर 78.80 प्रतिशत है जिसमें पुरूषों की साक्षरता दर 87.40 प्रतिशत है जबकि महिलाओं की साक्षरता दर 70.0 प्रतिशत है।

वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार उत्तराखण्ड की कुल जनसंख्या में कर्मकारों का प्रतिशत 38.72 है तथा 61.28 प्रतिशत अकर्मकर है। कुल कर्मकारों में 28.71 प्रतिशत

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

कृषक, 2.47 प्रतिशत कृषि श्रमिक, 0.77 प्रतिशत घरेलू उद्योगों में कार्यरत तथा शेष 15. 01 प्रतिशत अन्य सेवाओं में कार्यरत हैं। 1991 के अनुसार कृषि क्षेत्र में महिला कर्मकारों का प्रतिशत 89 है जो पुरूष कर्मकारों के प्रतिशत 42 के दुगने से भी अधिक है।

उत्तराखण्ड हिमालय में वन सम्पदा पर्याप्त मात्रा में है। इस क्षेत्र में वनों का कुल क्षेत्रफल 34355.15 हैक्टेयर है जो कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग 65 प्रतिशत है। यहां के अधिकांश वन सदाबहार हैं। जिनमें चीड़, देवदार इत्यादि बहुमूल्य इमारती लकडियों के वृक्ष भी हैं। प्रदेश में वन सम्पदा का उचित विदोहन नहीं हो पाया है, जिसका प्रमुख कारण क्षेत्र का पहाड़ी होना व यातायात की समस्या होना है। उत्तराखण्ड हिमालय में खनिज पदार्थो की भी बहुलता है। इस क्षेत्र में कुमायुं मण्डल के अन्तर्गत नैनीताल व अल्मोडा जिले तथा गढ़वाल मण्डल के अन्तर्गत चमोली व पौड़ी जिले में तांबा पाया जाता है। इसके अलावा गढ़वाल मण्डल के देहरादून व पौडी जिले में चूना पत्थर और टिहरी तथा देहरादून जिले में डोलोमाइट पाया जाता है।

उत्तराखण्ड हिमालय के निवासियों का मुख्य व्यवसाय कृषि है। यहां की लगभग 92 प्रतिशत जनसंख्या आजीविका हेतु कृषि पर ही निर्भर है। कृषि फसलों में गेहूँ, धान, मक्का, जौ, मॅडुआ, झंगोरा, सोयावीन, चना, मटर, सरसों आदि है। उत्तराखण्ड का कुल क्षेत्रफल 53.69 लाख है, जिसमें केवल 6.67 लाख हैक्टेयर भूमि ही कृषि कार्यो के लिये प्रयुक्त की जाती है। क्षेत्र में कृषि उत्पादन बिल्कुल ही न्यून है। यहॉ के लोगो का अधिकतम 4–6 माह का ही जीवन यापन हो सकता है। शेष समय में आजीविका हेतु यहां के निवासियों को अन्य व्यवसायों पर निर्भर होना, कृषि करने की परम्परागत तकनीकी, सीढीनुमा तथा विखरे खेत, भूमि की न्यून उर्वराशक्ति, खाद्यान्न फसलों की प्रमुखता, श्रम प्रधानता तथा अधिकांश जनसंख्या की आजीविका का साधन, यहॉ की कृषि की मुख्य विशेषतायें हैं।

देश के दूसरे राज्यों के समान कृषि क्षेत्र उत्तराखण्ड राज्य में भी रोजगार का एक बड़ा साधन रहा है। इस क्षेत्र में राज्य की 69 प्रतिशत जनसंख्या कार्यरत है। औद्योगिकीकरण की निम्न दशा होने के कारण व्यापार और वाणिज्य क्षेत्र में रोजगार को कृषि क्षेत्र के बाद दूसरा महत्वपूर्ण साधन माना है। यह देखा गया है कि देश में राज्य की जनसंख्या का एक बड़ा अंश सरकारी रोजगार में कार्यरत है। इससे राज्य वित्त पहले से ही इतना तना हुआ है कि रोजगार व्यक्ति को वेतन देने में अधिक से अधिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ रहा है। इससे स्पष्ट होता है कि राज्य में सरकारी

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

नौकरियों के उचित अवसर नहीं हैं। इसके पश्चात दूसरे क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों का निर्माण करना है।

उत्तराखण्ड औद्योगिकीकरण के लौकिक प्रकारों के लिये क्षेत्र सीमित है। इस राज्य में प्रकृतिक संसाधनों का विदोहन असन्तुलित रहा है। इस क्षेत्र की वन सम्पदा का विदोहन ब्राहत स्थानों के उद्योगों को संरक्षण देने के लिये किया गया न कि इस क्षेत्र के औद्योगिकीकरण को प्रोत्साहित तथा स्थापित करने के लिये वन सम्पदा का दोहन इतना अधिक असन्तुलित किया गया कि समस्त उत्तराखण्ड में भूक्षरण तथा भू–स्खलन की समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया है। भूगर्भीय संसाधनों का सर्वेक्षण आर्थिक दृष्टि से उपलब्ध नहीं हैं। जन शक्ति का प्रयोग उद्योगों को चलाने के लिये विद्युत शक्ति के रूप में प्राप्ति नगण्य है, ऐसी स्थिति में अधिक आय, जीवन स्तर में वृद्वि, रोजगार की अधिक सुविधायें और आर्थिक विकास अवरूद्व हो गया है। दूसरी ओर प्रावधिक शिक्षा की कमी, पूॅजी और साहसियों का नितान्त अभाव बाधायें उत्पन्न कर रहे हैं।

उत्तराखण्ड ने फल और बेमौसमी सब्जियों के उत्पादन में अधिक सफलता प्राप्त की है। इस राज्य में विभिन्न प्रकार के फल उगाये जाते हैं, जिसमें सेब की फसल प्रमुख है। अधिकतर 55530 हैक्टेयर क्षेत्र सेब के उत्पादन में लगा हुआ है। राज्य के कुल फल उत्पादन में सेब का अधिकतर 37 प्रतिशत भाग स्थापित है। यह वृद्वि प्रदेश में सौभाग्य का परिचय देती है। फिर भी सेब की वृद्वि अनुकूल जलवायु की आवश्यकता के कारण राज्य के परिमित क्षेत्र तक वस्तुतः सीमित रह गई है। राज्य के कृषि जलवायु क्षेत्र जो फल की उपज के लिये अच्छे हैं, किन्तु वहॉ मांग की बिन्दु का विचार नहीं आता। ये फल (जैसे– किटरस, आम, आलू बुखारा, और नाशपाती) को पहाड़ी क्षेत्र के मैदानी भागों में कोई भी तुलनात्मक उत्पादन लागत प्राप्त नहीं होती है। इस लिये मैदानी क्षेत्रों में उत्पादित वही फल बाजार के साथ स्पर्धा नहीं करते। यद्यपि राज्य के सभी जिलों में फल उत्पादन का एक निश्चित और सचेत प्रयास किया जा रहा है। इस प्रकार इस अनुसंधान के लिए एक प्रयत्न की आवश्यकता है कि भविष्य में राज्य के कृषि के विविधीकरण के लिये क्या बदलाव किये जायें। राज्य के कुल भागों में बेमौसमी सब्जियों के उत्पादन के अर्थशास्त्र में नवीन कार्य किया है। उसके वृतान्त से पता चलता है कि बेमौसमी सब्जियों के उत्पादन में बदलाव से प्राप्त आय, उत्पादन और रोजगार में दूसरी फसलों और फलों की अपेक्षा काफी अच्छा रहा है। साधारणतः कुछ खोजकर्ता राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों में आय और रोजगार को बढाने के लिये डेरी उद्योग में आकर्षित अवसर खोज रहे हैं।

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

राज्य के सभी जिलों में बेमौसमी सब्जियों को चयनित जगहों पर उगाया जा रहा है। सेब की तरह कृषि के विविधिकरण में बेमौसमी सब्जियों के उत्पादन से आय को विशेष रूप से बढाया जा रहा है। राज्य में सेब और बेमौसमी सब्जियों के उत्पादन की वृद्वि ने सफलता प्राप्त की है। ये प्राप्तियां पर्याप्त है परन्तु उनका विस्तार प्रभावशाली नहीं है। सांख्यिकी आंकडों पर आधारित भूमि का प्रयोग प्रदर्शित करता है कि राज्य में फलों की उन्नति में कृषिकृत क्षेत्र लगभग 6 प्रतिशत है और कुल फसल उत्पादन में सब्जियॉ लगभग 3 प्रतिशत क्षेत्र में उगाई जा रही हैं। 90 प्रतिशत से अधिक क्षेत्र प्रोत्साहित नहीं है। कुछ क्षेत्रों में परम्परागत जीविका कृषि मुख्य रूप से अनाज में वुद्वि के प्रभुत्व पर आधारित है। इन क्षेत्रों में कृषि विविधीकरण का प्राकृतिक तकनीकी अधःसंस्थान और संस्थात्मक तथ्यों द्वारा किया है, जबकि राज्य में रणनीति के विकास के बदलाव में कई सुझाव दिये जा रहे हैं पहला क्षेत्रीय विशेषताओं को अपने ध्यान में रखना चाहिये, जिससे विभिन्न उपयोगी वस्तुओं से हो रहे उत्पादन से राज्य को तुलनात्मक लाभ या हानि को निश्चित किया जा सके। कृषि योग्य सीमित भूमि, खेती कठिन प्रक्रिया, जोतों का छोटा आकार, लहराता हुआ प्राकृतिक दृष्य, उपभोग केन्द्र से दूरी, उत्पादित हो रही ईकाई और लघु उद्योग उत्पादन का विखराव के कारण पहाडी क्षेत्र मैदानी क्षेत्रों से बिल्कुल भिन्न है। इन्ही कारणों से पहाड़ी क्षेत्रों में उद्यमी के फसलों के व्यापारिक उत्पादन की बराबरी मैदानी क्षेत्रों से नहीं की जा सकती। पहाड़ी क्षेत्र को साधारणतः बदली हुई प्राकृतिक दिशा की विविधता और भिन्नता वरदान के रूप में प्राप्त है जिसमें बहुत सी उपयोगी वस्तुओं के उत्पादन में पर्वतीय क्षेत्र को फसलों के विविधिकरण और तुलनात्मक लाभ के लिये विभिन्न प्रकार के अवसर प्रदान किये गये हैं। कृषि के विकास से सम्बन्धित दूसरा बिन्दु है जो कम परिवहन लागत फसल और उत्पादन के ऊॅचे मूल्यों में कम विस्तार का उदाहरण है। तीसरा पारिस्थितिकी आश्वासन के कारण घटती हुई तकनीकी को बढावा देना।

सम्पन्न संसाधनों, अधःसंस्थान सुविधायें और कृषि की जलवायु की दशा पर आधारित उत्तराखण्ड राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में विकसित कृषि क्षेत्र के लिये दो रास्ते हैं। पहला उन उत्पादित वस्तुओं के प्रेरित उत्पादन जिसमें राज्य के बाहरी क्षेत्रों में आकृर्षित बाजार कीमत के अवसर हैं। फल सब्जियां और बागवानी से प्राप्त उत्पादित वस्तुयें इसी श्रेणी में आती है। दूसरा उन उत्पादित वस्तुओं से प्रेरित उत्पादन जिसमें स्थानीय मांग की पर्याप्तता हो और जिनसे राज्य के बाहरी क्षेत्रों से आ रही पूर्ती स्थापन्न की जा

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

सकती है। दूध इसका अच्छा उदाहरण है। इस अध्ययन से सिद्व किया जा चुका है कि पृथ्वी पर पशुधन के भार को कम किया जा सकता है।

जलवायु की दशाओं का एक बड़ा भाग जो राज्य में अनुकूल जलवायु के अनुसार फसलों (जैसे– टमाटर, मटर, सोयाबीन, पत्तागोभी और शिमलामिर्च) को उगाता है जबकि मैदानी क्षेत्रों की जलवायु बिल्कुल भिन्न है इस प्रकार राज्य में बैमोसमी सब्जियों को उगाना और बाजार तक पहुॅचाना जबकि ताजी सब्जियों की अत्यन्त कमी हो ताजी सब्जियों भारतीय उपभोक्ता के प्रतिष्ठा और दुर्लभता के कारण बैमोसमी सब्जियों को ऊॅची कीमत पर बेचना, उत्पादन और परिवहन की ऊॅची लागत को छिपाता है। बहुत दूसरी वस्तुयें (जैसे– मशरूम, विदेशी सब्जियां – केशपोरगस, चिकरी, लेटमूस, ब्रोकोली) जो आयातों के लिये सम्भावित हैं और जो राज्य की प्राकृतिक दशाओं में उगाये जा सकते हैं।

सारांश :– प्रत्यक्ष रूप से प्रतीत होता है कि कृषि को विविधिकरण के लिये बढ़ती हुई आय और बढ़ते हुये प्रशासनिक रोजगार में उद्यन और तीव्रता के लिये अच्छा क्षेत्र होगा। राज्य में निश्चित खलाता को पहले से ही इस दिशा में अ्रे की ओर बढ़ना राज्य के दूसरे भागों में इन सफल कहानियों को दोहराने के क्षेत्र से है। कृषि का विविधिकरण राज्य में कृषि से सम्बन्धित उद्योगों को आकृर्षित कर बाजार की पर्याप्तता को बढाता है।

राज्य में औद्योगिकीकरण के उत्पादन में जो सफलता प्राप्त की है वह संसाधनों से प्राप्त धन, तकनीकी, अधःसंस्थान, शोध विकसित उपजीविका सेवा वृद्वि के लिये अनुकूल दो पदार्थो की पारस्परिक क्रिया का परिणाम है। विविधिकरण से सम्बन्धित तथ्यों के अनुसार इसे तीन श्रेणीयों में बांटा गया है।

(1) प्राकृतिक तथ्य–वातावरणीय, भूमि सुधार ऊॅचाई सम्बन्धी और प्राकृतिक दिशा के दृश्य के रूप में।

(2) अधःसंरचना – सड़क, ऊॅचाई, बाजार, आदान पूर्ति प्रणाली संस्थात्मक कार्य।

(3) आर्थिक तथ्य – कीमत और कीमत भिन्न में प्रलोभन, पूॅजी साख, पूर्ति और उनकी तत्परता से सम्बन्धित कडी। जबकि प्राकृतिक तथ्य अधःसंरचना को दाव मीटर के रूप में प्रबन्ध करना और आर्थिक तथ्यों को विविधिकरण से रणनीति से प्राप्त इच्छित लक्ष्यों को योग्य बनाना।

उत्तराखण्ड का अनुभव सिद्व करता है एक सफल विविघ रणनीति का उद्देश्य केवल उत्पादन के आकार से सम्बन्धित नहीं होना चाहिये, बल्कि दूसरे आर्थिक तथ्यों और अधःसंरचना के विकास से भी सम्बन्धित नहीं होना चाहिए। विविधिकरण से उद्यमी

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

या तीव्रता का ही विकास नहीं होता है बल्कि सारे क्षेत्र अधःसंरचना और संस्थापक क्षेत्र की आकृति पर आधारित है।

कृषि के घरेलू और अन्तरराष्ट्रीय मांग में आवश्यक बदलाव अपनी जगह ले रहे हैं। पशु उत्पादन आय में आजीविकि के स्तर के ढंग और प्रतिष्ठा में सुधार कर रहे हैं। व्यापार की स्वतन्त्रता और व्यापार का विकास और परिवहन अधःसंरचना नये और दूर बाजार के दृष्टिकोण को सिद्व करता है। कृषि के विविधिकरण नये और लाभदायक अवसर का निर्माण करते हैं। विशेष रूप से उद्यम और उन्नत किसान उत्तराखण्ड राज्य की सरोवर है।

सन्दर्भ :-

Arora, R.C. 1997 : development of Agricultural and allied sectors, S. chand Publication new delhi p78.

Joshi, P.K., Birthal P.S., and Minto N., 2006 : Source of Agricultural Growth in India: Role of

Diversification towards High Value Crops'International Food Policy Research Institute, Washington, D.C. 2006 U.S.A., Pp 18.

Vyas, V.S. "Diversification in Agriculture: Concept, Rational and Approaches." Indian Journals of Agricultural Economics Vol. 51, No. 4 (Oct-Dec. 1996).

Joshi, P.K., Gulati A., Birthal P. S., and Tiwari L. 2004 : Agriculture Diversification in South

Asia: Pattern, Determinants and Policy Implications'. Economic and Political Weekly, Vol. 39, No. 24 (Jun. 12-18, 2004), pp. 2457-2467 .

Arora APS, Srivastava SK. : Diversification of Cropping Pattern and Food Grain Mix in India - Pace, Magnitude and Implications. Indian Journal of Agricultural Economics. 1996, Pp 699-700.

Bhalla GS, Singh G. Growth of Indian agriculture: a district level study. Planning Commission. GOI, 2010 Pp 20 to 50.

Chand KP, Singh R. Diversification of agriculture in Himachal Pradesh: A Spatio temporal analysis. Indian Journal of Agricultural Economics. 1985 Pp 451-454.

Joshi PK. "Crop Diversification in India: Nature, Pattern and Drivers" 2005.

Saleth, R. Maria. "Diversification Strategy for Small and Landless: Some Evidence from Tamil Nadu." Indian Journals of Agrocultural Economics Vol. 52, No. 1 (Jan-March 1997).

"Diversification of Agriculture and Fodd Security in the Context of New Economic Policy." Indian Journals of Agricultral Economics Vol. '52, No. 1 (Jan-March 1997).

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

P K Joshi, Ashok Gulati, Pratap S Birthal, Laxmi Tewari. "Agriculture Diversification in South Asia: Patterns, Determinants and Policy Implications." Economic and Political Weekly (June 2004).

UTTARAKHAND AT A GLANCE, Directorate of Economics & Statistics of Uttarakhand Dehradun 2015,2016,2017.

सांख्यिकी डायरी उत्तराखण्ड (विभिन्न अंक) अर्थ एवं सांख्या निदेशालय नियोजन विभाग, उत्तराखण्ड़ शासन देहरादून, 2015,2016,2017।

कुरूक्षेत्र : ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

योजना : सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

WRITERS VIEW
An Interdisciplinary, bilingual, bi-annual, a peer review or refereed, Indexed & Open Accesses International Research Journal
Vol. 5 No. 2 VIJAYADASHMI, Vikram Samvat 2077 Year 2(
ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

The effect of Childhood trauma on later life behaviour

Dr. Aparna Pathak

Abstract

According to the national Institute of mental health childhood trauma is defined as: "The experience of an event by a child that is emotionally painful and distressful, which often results in lasting mental and physical effects."

There are many types of childhood traumas, the more extreme forms of these trauma have traditionally been grouped together under the term "maltreatment": physical abuse, sexual abuse, neglect, and psychological maltreatment. Apart from these traumas are Physical abuse by adults or peers, sexual abuse by adults or peers, neglect, psychological maltreatment, witnessing violence, especially against the mother, family members with substance use, mental disorders, suicidality, family members who have been incarcerated, loss or separation from parents and childhood socio-economic disadvantage. The work in the area of childhood trauma is affected by methodological boundaries (NRC, 1993).

An approach that uses a combination of Cognitive Behavioural Therapy (CBT) and trauma-informed practice for working with children who have experienced traumatic events and their parents (Levers, 2012) is called trauma informed cognitive behaviour therapy. There are other therapies like child parent psychotherapy, parent -child interaction therapy, play therapy etc.

Assistant Professor, Psychology Department, DAV College Siwan

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

Childhood trauma is defined as: "The experience of an event of a child which is emotionally painful and distressful, and frequently it's consequences are permanent mental and bodily effects. "A powerful happening that threatens or causes harm, leads to trauma. This damage can be bodily or emotive, original or supposed, and it can portend the child or somebody near to victim. This Trauma may be caused by a solo happening, or it may happen due to experience of numerous happenings at different period. Adolescents are believed to be strong. Many of them have stress in their lives (e.g., going away from their caregivers when they have to go somewhere, going in a park for the very first time, feeing nervous before a game or performance) helps their brains to nurture and new skills to develop. Though, trauma is caused after a stressful practice (like, after getting cheated by someone, abandoned, or terrorized) overpowers the child's natural ability to cope. Such actions root a "face, run, or stay unreacted" answer, resulting in changes in the body—such as faster heart rate and higher blood pressure—as well as changes in how the brain perceives and responds to the world. Sometimes, it has been seen that child's physique and mind improve speedily from a potentially traumatic involvement with no permanent damage. However, for other children, trauma interferes with normal development and can have long-lasting effects.

Factors that determine the impact of traumatic events include the following:

- Age. The effect of trauma on small children is found to be more as compared to adolescents. Even infants and toddlers who are too young to talk about what happened are found to remember lifelong "experienced recollections" of traumatic proceedings that can change their well-being into maturity.
- Occurrence. Undergoing the similar sort of traumatic incident, a number of times, or several categories of traumatic events, brings more harm than only one event.
- Inter personal Relationship. Children with positive relationships with healthy caregivers are more likely to recover.

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

- Coping skills. Intelligence, physical health, and self-esteem help children cope
- Perception. How much danger the child thinks he or she is in, or the amount of fear the child feels at the time, is a significant factor.
- Sensitivity. Every child is different—some are naturally more sensitive than others.

The effects of trauma vary depending on the child and type of traumatic events experienced.

This list of potential consequences shows why it is so important for parents to understand trauma. The right kind of help can reduce or even eliminate many of these negative consequences.

Observing Child's Actions

After experiencing trauma, chiefly multiple traumatic events over a prolonged period of time, children's bodies, brains, and nervous systems adjust in an effort to defend them. Often this give birth to actions such as inefficiency to handle aggression, not able to believe or behave in a well-mannered way with adults, or detachment (getting away or disengaged from genuineness). When they are in threat, these behaviors may be significant for their existence. Though, when children are moved to a harmless environment, their brains and bodies may not distinguish that the danger has passed. These defensive behaviors, or habits, have grown-up sturdy from frequent use (just as a muscle that is used regularly grows bigger and stronger). It takes time and reskilling to help those "survival muscles" learn that they are not required in their new condition (your home), and that they can relax.

After experiencing trauma, the personal development of children and adolescents can be affected. Mental health issues may be developed and there is a higher risk for suicide. Some traumatic experiences for children and adolescents are: negligence, violence in their surroundings, home, or school; sexual or physical abuse; motor vehicle crashes; medical trauma (surgery); refugee and war zone trauma; terrorism; and natural disasters (American Psychological Association (APA), 2008; Spinazzola, et al., 2014; The National Child Traumatic Stress Network (NCTSN),). Direct and future results of trauma

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

are: meagre academic routine; sleeplessness, relationship difficulties, depression, intoxication or illicit drug use, and/or suicide attempts (Centre for Addictions and Mental Health, 2012; Centres for Disease Control and Prevention.).

Children undergone traumatic events want to feel safe and loved. All parents want to deliver this kind of nurturing home for their children. However, when they do not have an understanding of the results of trauma, they may misapprehend their child's behaviour and end up feeling irritated or annoyed. Their efforts to discourse disturbing behavior may be unsuccessful or, sometimes, even detrimental.

A specific study, done by *Dube et al.* (2001), elaborated collecting data related to this problem, found that those extremely affected by childhood trauma were an astounding **51 Xs (ie 5100%**) at greater risk of suicide attempts as a teenager compared to those who had went through or had been living a constant and good life as a child. As an adult they were found to be at **30Xs (ie 3000%)** bigger risk of attempting suicide compared to their contemporaries. Research has revealed that the experience of childhood trauma and the danger of the individual who grieved it attempting suicide in later life are strongly correlated. Other findings in the study by Dube et al were that about 67% of adult suicide efforts were related to the experience of childhood trauma, and, also, that about 80% of teenage suicide attempts were allied to the experience of abrupt behaviour they faced as a child. It was also found that the type of abuse that was most powerfully predictive of the person who experienced it making suicide attempts in later life was emotional abuse. Many other kinds of abuse were sturdily correlated with increased risk of suicide. These were domestic violence, loss of a parent (divorce or abandonment), family member in prison, parent with mental illness, parent with addiction, physical neglect, emotional neglect, physical abuse and verbal abuse. Trauma during childhood can interrupt psychological and biological growth, as demonstrated by developmental delays or permanent changes in the structure and composition of the brain (Cicchetti and Toth, 1995; De Bellis, 2001; Glaser, 2000;). The influence of trauma on the brain's strain response arrangements can make children more helpless to later

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

stressful trials and to the beginning of psychopathology. Childhood trauma can also root earlier commencement of psychopathology and suicidality and lead to a force of other life events, with the risk for suicidality.

Countrywide investigation of teen ill-treatment is checked out every year by the National Child Abuse and Neglect Data System (NCANDS). It has been observed that number of physiological and sexual exploitation are very high. It was checked and tested in reviews of mothers or fathers or both of the victims, or victims themselves. The results were that Investigations of parents find self-reported charges of child physical exploitation that are 5–11 times higher than rates from official records (reviewed in Margolin and Gordis, 2000). Another concern about self-reports, particularly with sexual abuse, regards repression of memories as a means of self-protection, with later recovery in adulthood. Repression could lead to either false positive or false negative reporting, but the evidence for repression appears to be controversial (Berliner and Williams, 1994; Loftus et al., 1998). There are no data to indicate what percentage of "recovered memories" are inaccurate, but data indicate 47–95 percent of recovered memories of non-bizarre child abuse are confirmed, and only 1–3 percent of bizarre abuse memories are confirmed (Bowman, 1996a; Bowman, 1996b). In general, the prevalence of child sexual abuse is higher for females (12-17 percent) than for males (5-8 percent) (Gorey and Leslie, 1997; Molnar et al., 2001b).

Biopsychosocial Effects of Childhood Trauma

Childhood trauma might lead to poorer health in midlife through disturbances in the patterns of everyday life events and responses to those events. Further, findings indicate that mastery may have a different meaning for those who experienced childhood trauma. We discuss social-emotional regulation as one pathway linking childhood trauma to health, and psychosocial resources to consider when building resilience-promoting interventions for mitigating the detrimental health effects of childhood trauma. Important changes in the anatomy and physiology of the developing brain are result from childhood trauma. Some of the observed changes in brain development may be due to chronically elevated catecholamine and cortisol levels, possibly through their effects on neuron

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

metabolism or death, neurogenesis or migration patterns, and delays in myelination (reviewed by De Bellis, 2001). Indications of abnormal cortical and limbic system development come from symptom self-reports by adults with past sexual or physical abuse (Teicher et al., 1993). The symptom findings were followed up with EEG studies which found that children hospitalized from physical or sexual abuse had left hemisphere deficits (Ito et al., 1998; Ito et al., 1993). The significance of these findings is unclear, but researchers speculate that early abuse may impede hemispheric integration and the establishment of normal left cortical dominance. Contact with a disturbing occurrence or sequence of enduring distressing actions (e.g., child maltreatment) triggers the body's biological stress response structures. Stress activation has behavioral and emotional effects that are alike to individual PTSS indications. Further, an individual's biological stress response system is made up of diverse, interrelating systems, that work organized to direct the body's consideration toward caring the individual against environmental life pressures and to change metabolic possessions away from homeostasis and near a "fight or flight" (and/or freezing) response. The stressors related with the traumatic event are handled by the body's sensory systems through the brain's thalamus, which then triggers the amygdala, a central constituent of the brain's fear exposure and anxiety circuits. Cortisol levels become raised through transmission of fear signals to neurons in the prefrontal cortex, hypothalamus, and hippocampus, and activity increases in the locus coeruleus and sympathetic nervous system. Succeeding changes in, catecholamine levels contribute to changes in heart rate, metabolic rate, blood pressure, and alertness. This procedure also leads to the activation of extra biological stress systems. Other potential biological influences to consider might be diet and sleep habits or factors due to chemical imbalances in the body, like depression, anxiety, impulse control, and other mental health concerns that can negatively impact our ability to resist behaviours like viewing pornography. Medical professionals and other health practitioners can be helpful in such situations.

The psychosocial and behavioral penalties of childhood trauma can be unembellished. Apart from later effects on psychopathology or suicidal

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

behavior, research has established a spectrum of more immediate effects, ranging from low self-esteem to substance use and delinquent behavior (for reviews, see Cicchetti and Toth, 1995; Cicchetti et al., 2000; Margolin and Gordis, 2000; NRC, 1993; Trickett and Putnam, 1998). Most of the research literature deals with maltreatment. Yet maltreatment often occurs within the context of many other childhood traumas, such as parental psychopathology, violence (domestic and community), and household substance abuse. Researchers have gravitated to the view that it is very difficult to disentangle the effects of one trauma from another (Margolin and Gordis, 2000). Overall, studies have found that multiple, rather than individual, traumas are tied to a broad range of difficulties in childhood. Among the key consequences of childhood maltreatment are impaired social attachments. More than 70 percent of maltreated children display insecure attachments with caregivers, which often assume a disorganized/disoriented pattern. The research literature suggests that attachment problems with caregivers generalize to potentially life-long patterns of maladaptive interpersonal relationships (Cicchetti and Toth, 1995; Cicchetti et al., 2000).

Trauma and Mental Health

Psychological influences may include early childhood trauma, low feelings of self-worth, depression or anxiety caused by life experiences, or a number of other emotional issues. These influences may be less obvious, but identifying them can be helpful in determining what may be driving a child's desire to continue pornography use. Discussions with our children about these and other psychological influences may help them grow emotionally. We can also seek to help our children learn how to identify and regulate their emotions. Trauma symptoms that are more severe or disruptive to a child's ability to function at home or at school may overlap with specific mental health diagnoses. This may be one reason why nearly 80 percent of children aging out of foster care have received a mental health diagnosis.

- Children who have difficulty concentrating may be diagnosed with ADHD (attention deficit hyperactivity disorder).

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

- Children who appear anxious or easily overwhelmed by emotions may be diagnosed with anxiety or depression.
- Children who have trouble with the unexpected may respond by trying to control every situation or by showing extreme reactions to change. In some cases, these behaviors may be labeled ODD (oppositional defiant disorder) or intermittent explosive disorder (IED).
- Dissociation in response to a trauma trigger may be viewed as defiance of authority, or it may be diagnosed as depression, ADHD (inattentive type), or even a developmental delay.

It may be necessary to treat these diagnoses with traditional mental health approaches (including the use of medications, where indicated) in the short term. However, treating the underlying cause by addressing the child's experience of trauma will be more effective in the long run.

Humans and animals require nurturing from a caregiver in order to survive, When a child does not receive consistent, secure interactions, or experiences painfully stressing ones, maldevelopment results. *In vivo* studies have shown that marked alterations in neurotransmitter systems occur within one week of separation from the mother, whereas animals receiving various kinds of nurturing contact during their infancy have shown more efficient brain circuitry for reducing anxiety as adults. Moreover, *in vivo* studies have demonstrated that animals exposed to prenatal stress exhibit characteristics of drug addiction, alcoholism and increased risk of self-administration of drugs.

Early trauma has consequences for how human beings respond to stress. Trauma in children, such as sexual, physical or emotional abuse or abandonment alter the child's physical stress mechanisms and, as a result, the child is more reactive to stress throughout their adult life. Studies of drug addicts find high percentages patients have experienced childhood trauma of various sorts, including physical, sexual and emotional abuse.

The three dominant brain systems in all addictions—the opioid attachment-reward system, the dopamine-based incentive-motivation apparatus and the self-regulation areas of the prefrontal cortex—are all exquisitely fine-tuned by the environment. To various degrees, in all addicted persons these systems are

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

not functioning properly. Accordingly, this article explores the relationship between childhood emotional loss or trauma and addiction, demonstrating a fourth brain-body system implicated in addiction: the stress-response mechanism. The findings from clinical and developmental research underscore the importance of focusing on children's friendships and peer relations in clinical assessments. Peer rejection is particularly important to assess, as are prosocial skills that lead to peer acceptance. Research has shown a strong association between peer rejection and aggressive behaviour among children of all ages (Coie, Dodge, & Kupersmidt, 1990). However, not all aggressive children are rejected by their peers. To evaluate whether an aggressive child is also likely to be rejected by peers, Bierman and Welsh (1997) advise focusing on the following key risk factors:

• Does the child exhibit a wide range of conduct problems, including disruptive or hyperactive behaviour or attention problems, as well as physical aggression?
• Does the child have deficits in positive social skills?
• Is the child ostracized by peers?
• Does the child have opportunities for positive peer interactions?
• Is the child a member of a deviant peer group, such as a gang, or does the child act aggressively alone, perhaps driven by feelings of injustice and/or need for revenge?
• Is the child's aggressive behaviour physical and "instrumental" (i.e., done for a purpose; e.g., demonstrating physical superiority or warding off a fight), or is the child's aggressive behaviour "reactive" (i.e., arises from poor control of emotional arousal and anger)? Social needs are important in the life of a developing child. Friends, acceptance, and connection take on greater importance as children move into adolescence. We can look for natural opportunities to guide our children as they share feelings of belonging, loneliness, or confusion about interacting with members of the opposite sex. We can also seek to help them understand and control their use of social media and technology. Acquiring healthy social skills is important for any child, but particularly so for one who is struggling with peer issues and turning to pornography. Exposure to maltreatment in childhood is a powerful predictor of

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

health outcomes later in life—not only Psychological like depression and anxiety, but also physical health outcomes like cardiovascular disease, diabetes and cancer," said Katie McLaughlin, Ph.D., an associate professor of psychology at Harvard University and senior author of the study published in the journal *Psychological Bulletin*. "Our study suggests that experiencing violence can make the body age more quickly at a biological level, which may help to explain that connection."

Children who suffer trauma from abuse or violence early in life show biological signs of aging faster than children who have never experienced adversity, according to research published by the American Psychological Association. The study examined three different signs of biological aging—early puberty, cellular aging and changes in brain structure—and found that trauma exposure was associated with all three. A study conducted by Martin Teicher (MD, PHD), associate professor of psychiatry at Harvard Medical School, has concluded that child abuse (physical, verbal, and sexual) affects brain activity and may be the cause of certain behaviours.

- Victims of abuse have a smaller corpus callosum (a thick nerve cell cable connecting the left and right brain). This was found smaller in boys who were victims of neglect and girls who were victims of sexual abuse. This shrinking of the connector may also be linked to mood and personality switches.
- Instability was seen in the cerebellar vermis, a part of the brain the regulates emotions and attention. It has been found that this part of the brain is affected more by the external environment than by genetic factors.
- Due to extensive abuse, the brain experiences an overflow of stress hormones that affects brain signals, and it learns to overreact in all stressful situations (minor or major).
- Right-handed victims of abuse showed altered/unusual activity in the left side of the brain. This may result in depression and memory trouble in victims.

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

- Altered electrical activity in the brain also created seizure-like states without the presence of epilepsy.
- This state of the brain also correlates with the thoughts of suicide that victims of abuse have had, with it occurring four to five times more than in healthy individuals.

  Importantly, it has been found that childhood maltreatment can influence cortisol production by impairing a child's social relationships. In a study of maltreated and non-maltreated children, maltreated children displayed less prosocial and more disruptive, aggressive, and withdrawn behaviours. Constantly elevated stress chemicals can also directly lead to behavioral changes. Increased levels of stress chemicals have been shown to facilitate the maintenance of traumatic memories by prompting the individual to re-experience the emotional and physiological state he/she experienced during the traumatic event.7 This may happen due to the fact that the experience of a threat increases stress chemicals and an individual's attention to their surroundings. Heightened attention to surroundings during the experience of trauma combined with recurrent and chronic elevations of stress chemicals maintains traumatic memories, which can impair behaviour by causing distress, as reminders of the trauma that previously happened can be very upsetting. Additionally, chronic biological and psychological hyperarousal obstructs overall functioning as it interferes with a child's ability to pay attention, complete tasks, and learn new skills.

Possible Actions to Take in Light of Above Findings:

Early treatment for child abuse survivors and early family-based interventions to reduce child abuse are expected to reduce suicide.

It is essential to ask the solution to this tragic problem. More training should be there for those who work with children about the effects of childhood trauma and how best to treat these effects. Education to be given to the public in general about the effects of childhood trauma. Schools should keep them in education and provide the appropriate counseling and/or other professional support.

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

Sensitive and compassionate response should be given to 'problem behaviour' by young people, both in schools and other applicable environments. A second limitation in the current research on childhood abuse is the use of inconsistent and imprecise definitions of maltreatment (NRC, 1993). The third limitation is instrumentation. Previous reports by the National Research Council have commented on the lack of reliability and validity testing of self-report instruments (NRC, 1993). However, recently published studies have begun to address this problem (e.g., Bremner et al., 2000; Straus et al., 1998). A fourth limitation is that child maltreatment questions are often excluded from larger studies and epidemiological surveys of children, representing significant missed opportunities.

Helping the suffering child

Although childhood trauma can have serious, lasting effects, there is hope. With the help of supportive, caring adults, children can and do recover. Consider the following tips:

- *Identify trauma triggers*- Something you are doing or saying, or something harmless in your home, may be triggering your child without either of you realizing it. It is important to watch for patterns of behavior and reactions that do not seem to "fit" the situation. What distracts your child, makes him or her anxious, or results in a tantrum or outburst? Help your child avoid situations that trigger traumatic memories, at least until more healing has occurred.
- *Be emotionally and physically available*- Some traumatized children act in ways that keep adults at a distance (whether they mean to or not). Provide attention, comfort, and encouragement in ways your child will accept. Younger children may want extra hugs or cuddling; for older youth, this might just mean spending time together as a family. Follow their lead and be patient if children seem needy.
- Respond, don't react. Your reactions may trigger a child or youth who is already feeling overwhelmed. (Some children are even uncomfortable being looked at directly for too long.) When your child

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

is upset, do what you can to keep calm: Lower your voice, acknowledge your child's feelings, and be reassuring and honest.

- Avoid physical punishment. This may make an abused child's stress or feeling of panic even worse. Parents need to set reasonable and consistent limits and expectations and use praise for desirable behaviors.
- Don't take behavior personally. Allow the child to feel his or her feelings without judgment. Help him or her find words and other acceptable ways of expressing feelings, and offer praise when these are used.
- Listen. Don't avoid difficult topics or uncomfortable conversations. (But don't force children to talk before they are ready.) Let children know that it's normal to have many feelings after a traumatic experience. Take their reactions seriously, correct any misinformation about the traumatic event, and reassure them that what happened was not their fault.
- Help your child learn to relax. Encourage your child to practice slow breathing, listen to calming music, or say positive things ("I am safe now.").
- Be consistent and predictable. Develop a regular routine for meals, play time, and bedtime. Prepare your child in advance for changes or new experiences.
- Be patient. Everyone heals differently from trauma, and trust does not develop overnight. Respecting each child's own course of recovery is important.
- Allow some control. Reasonable, age-appropriate choices encourage a child or youth's sense of having control of his or her own life.
- Encourage self-esteem. Positive experiences can help children recover from trauma and increase resilience.

Therapeutic interventions need to focus on reducing the effects of future stressors and reprogramming the brain's stress response system, working on de-activating it and learning how to regulate emotional responses. This

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

is supported by the research in this article related to the activation of the stress response by trauma. Interventions in therapy should focus on teaching the individual and family emotional regulation techniques such as deep breathing, relaxation and positive imagery so they can learn that through practice they can self-regulate reactions to stress. It is important that more than just the individual in therapy learn these techniques so that behavior can be encouraged. in the environment and the family can also learn the benefit of regulating themselves, thus resulting in a more adaptive environment and reducing future stressors. This process needs to occur early on before processing of trauma can occur. If there are no adaptive ways to respond to stress and trauma a person will utilize non-adaptive ways of responding to stress that increase future stressors or traumas. Without an adaptive way to respond it is difficult for an individual to manage the difficult emotions that will arise during the processing of past traumas.

Telling the story of what happened while gradually increasing connection to body-sensations will help process and release the high energy charge in the nervous system. It is by careful monitoring, where one can venture into 'unsafe' emotional territory while at the same time building increased capacity to contain and hold the space for the accompanying body-sensations, that release and resolving PTSD can be successful.

Trauma can affect children's behavior in ways that may be confusing or distressing for caregivers. It can impact the long-term health and well-being of the child and his or her family members. However, with understanding, care, and proper treatment (when necessary), all members of the family can heal and thrive after a traumatic event.

References

Appel & Holden (1998). The co-occurrence of spouse and physical child abuse: A review and appraisal. Journal of Family Psychology, 12(4), 578-599.

Barth, R. P., Lloyd, C. E., Green, R. L., James, S., Leslie, L.K., & Landsverk, J. (2007). Predictors of placement moves among children with and without

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

emotional and behavioral disorders. Journal of Emotional and Behavioral Disorders, 15(1), 46-55.

Bierman and Welsh (1997)

Bryant R. Acute stress reactions: Can biological responses predict Posttraumatic Stress Disorder? CNS Spectrums: The International Journal of Neuropsychiatric Medicine. 2003;8(9):668-674.

Centre for Addictions and Mental Health. (2012). *Trauma: What is trauma?* Retrieved from http://www.camh.ca/en/hospital/health_information/a_z_mental_health_and_addiction_information/Trama/Pages/default.aspx

Cicchetti D, Rogosch FA. Diverse patterns of neuroendocrine activity in maltreated children. Dev Psychopathol. 2001; 9:799-817.

Cicchetti D, Rogosch FA, Toth SL. Fostering secure attachment in infants in maltreating families through preventive interventions. Dev Psychopathol. 2006; 18: 623-649.

Coie, Dodge, & Kupersmidt, 1990

Dube, S., Anda, R., Felitti, V., Chapman, D., Williamson, D., & Giles, W. (2001). Childhood abuse, household dysfunction, and the risk of attempted suicide throughout the life span: Findings from the adverse childhood experiences study. Journal of the American Medical Association, 286(24), 3089-3096.

D., Horwood, J., & Lynskey, M. (1996). Childhood sexual abuse and psychiatric disorder in young adulthood, II: Psychiatric outcomes of childhood sexual abuse. Journal of the American Academy of Child & Adolescent Psychiatry, 35, 1365-1374.

D., Horwood, J., & Lynskey, M. (1996). Childhood sexual abuse and psychiatric disorder in young adulthood, II: Psychiatric outcomes of childhood sexual abuse. Journal of the American Academy of Child & Adolescent Psychiatry, 35, 1365-1374.

Fergusson, D., Horwood, J., & Lynskey, M. (1996). Childhood sexual abuse and psychiatric disorder in young adulthood, II: Psychiatric outcomes of

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

childhood sexual abuse. *Journal of the American Academy of Child & Adolescent Psychiatry, 35,* 1365–1374.

Franklin TB, Russig H, Weiss IC, et al. Epigenetic transmission of the impact of early stress across generations. Biol Psychiat. 2010;68(5):408-415

Rosenberg, L. (2011). Addressing trauma in mental health and substance use treatment. *The Journal of Behavioral Health Services & Research, 38*(4), 428-431.

Salzinger, S., Rosario, M., Feldman, R., & Ng-Mak, D. (2007). Adolescent suicidal behavior: Associations with preadolescent physical abuse and selected risk and protective factors. *Journal of the American Academy of Child & Adolescent Psychiatry, 46*(7), 859-866.

WRITERS VIEW
An Interdisciplinary, bilingual, bi-annual, a peer review or refereed, Indexed & Open Accesses International Research Journal
Vol. 5 No. 2 VIJAYADASHMI, Vikram Samvat 2077 Year 2(
ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

रामायण में रुद्र-शिव का ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ. शत्रुजीत सिंह

शोध सारांश

रामायण मूलतः वैष्णव धर्म का प्रतिपादक ग्रन्थ है, किन्तु इनमें पौराणिक शैव धर्म का प्राचीनतम रूप भी स्पष्टतया दिखायी पड़ता है। रुद्र के संहारक रूप की अपेक्षा उनके सौम्य रूप पर अत्यधिक बल दिया गया है। रामायण में रुद्र नाम की अपेक्षा महेश्वर, शंकर, महादेव, त्र्यम्बक आदि नामों का प्रयोग उल्लिखित है। ये महादेव सदैव ही लोक कल्याण में प्रवृत्त हैं।[1] शिव देव देवेश्वर तथा देवेश हैं।[2] रामायण में शिव एवं शिव से सम्बद्ध स्तुतियों का गान किया गया है। साथ ही उनकी पूजा विधि तथा उपासना एवं साधना का विस्तृत उल्लेख है।

बीज शब्द

रुद्र का शिव में परिवर्तन, त्रिमूर्ति में महत्वपूर्ण देव स्थान, शिव महायोगी, शिव–पार्वती कथानक, गंगावतरण, शिव के स्वरूप एवं उपासना।

सहायक आचार्य, विश्वनाथ सरस्वती महिला महाविद्यालय, दुदही, कुशीनगर

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

शोध विस्तार

वैदिक वाङ्मय में शिव के रुद्र रूप का ही विशेष वर्णन प्राप्त होता है। जहाँ रुद्र को झंझावत का देवता, महामारी फैलाने वाले तथा इनके द्वारा फेंके गये बाणों से पशुओं एवं मनुष्यों को हत करने वाला कहा गया है। महाकाव्य काल तक आते–आते रुद्र के सौम्यरूप शिव में परिवर्तन स्पष्टतः परिलक्षित होने लगता है। रामायण में रुद्र का स्वरूप परिवर्तित होने लगा, अब वे 'रुद्र' नहीं अपितु 'शिव' हो गये। यह परिवर्तन केवल नाम का नहीं था अपितु भयावह रुद्र से सौम्य शिव अब वरदाता, आशुतोष हो गये थे। इस काल में भक्तिवाद का प्रादूर्भाव हो चुका था और विष्णु तथा शिव को भक्तिवाद का आराध्य देव बनाया गया था। अब रुद्र वह देव नहीं थे, जिनके भयानक बाणों से सभी डरते थे, अपितु वे सदा ही मानवमात्र के कल्याण करने में लगे रहते है।[3] वे अपने भक्तों के लिए वरदाता[4], आशुतोष और दयानिधि हैं। उनका पद अब अत्यन्त उच्च श्रेणी का है। उपनिषदों में रुद्र को जो परमब्रह्म कहा जाता था, अब भक्तिवाद में उस रूप का अधिक से अधिक प्रचार हुआ। अब प्राचीन वैदिक मण्डल नगण्य हो गया था और उसके स्थान पर एक 'त्रिमूर्ति' का उत्थान हो गया। इस त्रिमूर्ति के तीन देवता ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव थे। ब्रह्मा का स्थान इन दो देवताओं से नीचे था। इसकी प्रमाणिकता भी एक प्रसंग से होता है– जब–जब देवताओं पर कोई संकट पड़ता है तो अधिकांश ब्रह्मा देवताओं की ओर से विष्णु व शिव में से किसी एक के पास सहायता के लिए याचना करते दिखलाई देते हैं।[5]

ज्ञातव्य है कि रामायण एक वैष्णव ग्रन्थ है, जिसके कारण विष्णु को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। परन्तु जहाँ–जहाँ शिव का प्रसंग आया है, शिव को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है। शिव को देवों के देव कहा गया है।[6] अमरलोक में भी उनकी उपासना होती है।[7] अनेक संकटों में देवतागण प्रायः उन्हीं के पास सहायता के लिए आते हैं। एक बार तो स्वयं विष्णु अन्य देवताओं को लेकर उनकी शरण में गये थे।[8] एक स्थान पर स्पष्ट रूप से शिव को जगत् की सृष्टि और अन्त करने वाला, सब लोकों का आधार और परम् गुरु कहा गया है।[9] एक अन्य स्थान पर उन्हें 'अमर', 'अक्षर' और 'अव्यय' माना गया है।[10]

रामायण में उल्लिखित है कि शिव को प्रसन्न करना, उनकी उपासना तथा उनसे वरदान पाने का सामान्य मार्ग तपश्चर्या थी। भगीरथ[11] और विश्वामित्र[12] ने इसी मार्ग से उनको प्रसन्न किया था। स्वयं देवताओं को भी शिव से वरदान पाने के लिए तप करना

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

पड़ता है।[13] यह समय योगाभ्यास और तपश्चर्या को मोक्ष प्राप्ति के साथ–साथ अनेक दैवीय शक्तियों को प्राप्त करने का साधन माना जाता था। शिव को, जो स्वयं योगाधिगम्य थे, योगाभ्यासी माना जाता था और उन्हें महायोगी कहा जाता था। रामायण में शिव का उल्लेख हिमालय में योगाभ्यास करते हुए किया गया है।[14]

रामायण में शिव एक कल्याणकारी देवता तो माने ही जाते थे, साथ ही रुद्रपत्नी का भी उल्लेख मिलता है। रुद्रपत्नी के बारे में बताया गया है कि उनका नाम 'उमा' है[15] और वे हिमालय की पुत्री बतायी गयी हैं।[16] इन्हीं को केन उपनिषद् में 'उमा हैमवती' कहा गया है। हिमवत् से सम्बन्ध होने के कारण इनका नाम पार्वती भी पड़ा जो इनका सबसे प्रचलित नाम हो गया।[17] एक बार इनको 'रुद्राणी' भी कहा गया है।[18] रामायण में देवी की शिव के साथ ही उपासना होती है और जिस प्रकार भक्तजन भगवान् शिव से कल्याण की प्रार्थना करते हैं, उसी प्रकार देवी से भी करते हैं।

रामायण में शिव और शिव–पार्वती सम्बन्धी अनेक देवकथाओं और आख्यानों का प्रादूर्भाव हुआ और शिवोपासना के लोकप्रचलित रूप का एक प्रमुख अंग बन गया। अब रुद्र का शिवरूप में परिवर्तन इस प्रकार हुआ कि उनका नाम, स्वरूप और उपासना के तरीके तो बदल ही गये, इसके साथ उनके सम्बन्ध में जिन देवकथाओं का प्रादूर्भाव हुआ, वे भी बदल गई। परन्तु कुछ देवकथाओं का बीज हमें वैदिक साहित्य में भी मिल जाता है और ये ही कथाएँ वैदिक रुद्र और वेदोत्तरकालीन शिव में सम्बन्ध स्थापित करती हैं और हमें स्मरण कराती हैं कि ये दोनों मूल रूप से एक ही देवता हैं।[19] कैलाश पर्वत पर शिव के आवास का होना[20] एक प्रमुख उदाहरण है। यह भी विदित होता है कि वैदिक रुद्र के उत्तर दिशा के साथ जो सम्बन्ध था वो अब भी शिव के साथ है।

रामायण में भगवान् शिव के विषपान की कथा का भी वर्णन है।[21] यह सागर मन्थन की वृहत् कथा का एक भाग है। इसमें देव और दानव, मन्दार पर्वत को रई (मथनी) बनाकर और नाग वासुकि को रज्जु बनाकर जब दीर्घकाल तक सागर का मन्थन करते रहे, तब वासुकि के मुख से और मन्दार पर्वत के चट्टानों से हलाहल टपकने लगा, जिससे समस्त सृष्टि और स्वयं देव तथा दानवों के भस्म हो जाने का संकट पैदा हो गया। जब देवतागण भयभीत होकर शिव के पास पहुँचे और देवतागणों के तरफ से विष्णु ने शिव से प्रार्थना की, तब जाकर शिव ने उस हलाहल को इस प्रकार पी लिया जैसे कोई अमृत। परन्तु इसमें यह वर्णन नहीं मिलता कि शिव ने विष को अपने कण्ठ के पास ही रोक लिया था। इस कथा की उत्पत्ति वैदिक ग्रन्थों से चली आ रही शिव की 'नीलग्रीव', 'नीलकण्ठ' उपाधि को समझाने के लिए की गई हो।[22]

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

रामायण में गंगावतरण की भी एक कथा मिलती है[23], जिसमें शिव ने गंगा के अभिमान का मर्दन करते हुए गंगा को पृथ्वी पर उतारा था। इसमें यह बताया गया है कि भगीरथ अपने पूर्वज सगरपुत्रों के उद्धार के लिए गंगा को स्वर्ग से उतारकर पृथ्वी पर लाना चाहते थे। उनकी भक्ति और प्रार्थना से प्रसन्न होकर शिव ने गंगा के प्रपात को रोकने के लिए, उसे पृथ्वी पर पहुँचाने से पहले, अपने सिर पर लेना स्वीकार कर लिया। अपने अभिमान में गंगा ने चाहा कि भगवान् शिव को भी अपने साथ बहा ले जाँय और पाताल लोक पहुँचा दे। गंगा के अभिमान–मर्दन के लिए शिव ने गंगा की धारा को अपने जटाओं में ले लिया और उन जटाओं की जंगल में गंगा ऐसी खोईं कि लाख प्रयत्नों के पश्चात् भी बाहर निकलने का कोई मार्ग न पा सकीं। तत्पश्चात् अभिमान चूर हो जाने पर भगीरथ के अनुरोध पर शिव ने गंगा को मुक्त कर दिया। इस कथा का प्रयोजन स्पष्ट रूप से शिव की महत्ता को प्रदर्शित करने के लिए ही किया गया होगा।

इस काल तक देवताओं के स्वरूप का मानवीकरण हो जाने के कारण उस समय अगर देवताओं की पत्नी भी मिले तो वह सामान्य परिणय विधि द्वारा मिले। यही प्रचलन बन गया था। शिव का विवाह सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन भी रामायण में उल्लिखित है। रामायाण में कहा गया है कि उमा अर्थात् पार्वती ने शिव को वर रूप में पाने के लिए तपस्या की और उसके पिता ने यथासमय उसका विवाह शिव से कर दिया।[24] रामायण में कामदेव को अपनी तिसरी नेत्र से भस्म करने वाली घटना का वर्णन है। उसके अनुसार कामदेव जो पहले सशरीर था, विवाह के उपरान्त अपनी पत्नी के साथ घूमते हुए शिव को रोकने की उदण्डता की, परन्तु शिव के तृतीय नेत्र के प्रचण्ड क्रोधाग्नि से वह भस्म हो गया। इसके उपरान्त शिव को 'कामारि' कहा जाने लगा।[25]

रामायण में शिव के बारे में अनेक रोचक तथ्यों का रहस्योद्घाटन होता है। इनसे ज्ञात होता है कि भगवान् शिव जितना सहयोग देवताओं का करते थे, उतना ही देवताओं के घोर शत्रु दानवों का भी करते थे। उनकी आराधना कोई भी कर सकता था और वे प्रसन्न होने के पश्चात् देव, दानव और मानव में कोई भेद नहीं करते थे और उनको मनोवांछित वरदान भी देते थे।[26] इसके अनेकों प्रसंग रामायण में मिलते हैं। रावण का जब एक बार अभिमान टूट गया, तब वह शिव का भक्त बन गया।[27] विद्युत्केश नामक दानव को पार्वती ने गोद लिया था और शिव ने उसे अमरत्व का वरदान दिया था।[28] एक जगह विवरण मिलता है कि देवताओं के प्रार्थना करने पर भी शिव ने दानवों का संहार करने से इन्कार कर दिया; क्योंकि वह पहले ही दानवों का संहार न करने का वचन दे दिया था।[29] इससे शिव का दानवों के साथ कुछ निकट सम्बन्ध प्रतीत होता है

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

और इसी बात में वह विष्णु से बिल्कुल विपरीत हैं। विष्णु ने कभी किसी दानव को कोई वरदान नहीं दिया और न किसी दानव ने ही कभी विष्णु की उपासना की। वे हमेशा देवताओं के पक्षपाती और दानवों के संहारक रहे हैं। शिव के द्वारा देवताओं की प्रार्थना अस्वीकार करने के पश्चात् विष्णु ने उनके कार्य को अपने ऊपर लिया। यह अन्तर इन दोनों देवताओं में एक मौलिक भेद का परिचायक है।

रामायण में शिव के स्वरूप और उनकी उपासना के प्रमुख अंशों का उल्लेख मिलता है। रामायण में शिव को दो नई उपाधियाँ दी गयीं हैं– 'हर'[30] और 'वृषध्वज'[31]। 'हर' नाम की व्युत्पत्ति 'हृ' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है 'ले जाना'। अनुमानतः यह उपाधि प्रारम्भ में अग्नि की थी; क्योंकि अग्नि को देवताओं के लिए बलि ले जाने वाला माना जाता था। जब रुद्र और अग्नि का तादात्म्य हुआ, तब सम्भवतः यह उपाधि रुद्र को प्राप्त हुई और कालान्तर में यह उपाधि शिव के सबसे अधिक प्रचलित नामों में से एक हो गई। दूसरी उपाधि के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि 'वृषभ' या 'वृष' रुद्र की एक सामान्य उपाधि थी। इन शब्दों का व्यावहारिक अर्थ 'बैल' है। ब्राह्मण–ग्रन्थों और उत्तरवैदिक साहित्य में भी यह शब्द रुद्र की उपाधि मात्र ही रहा, और रुद्र के सम्बन्ध में इसका शाब्दिक अर्थ 'वर्षयिता' अर्थात् वर्षा करने वाला किया जाता था। परन्तु धीरे–धीरे लोग इसका अर्थ भूल गये और उन्होंने वृषभ को शिव का वाहन मान लिया। इसके उपरान्त शिव के मन्दिरों पर जो पताकाएँ फहराई जाती थीं, उन पर सम्भवतः वृषभ के चित्र बनने लगे और इस प्रकार शिव को 'वृषभध्वज' की नई उपाधि मिली।[32] प्रथम बार रामायण में ही शिव के परिचर 'नन्दी' का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[33] उसको कराल आकृति वाला, कृष्ण पिंगल वर्ग का, वामनाकार, छोटी–छोटी बाँहों वाला, परन्तु महाबली, विकट रूप और मुण्डी कहा गया है।

सन्दर्भ

1. वाल्मिकी रामायण, 1, 36, 9– देव देव महादेव, लोकस्यास्याहितेरत।
2. वाल्मिकी रामायण, 1, 45, 22, 1.66.11
3. रामायण, बालकाण्ड, 36.9–20
4. तत्रैव, 55.13
5. तत्रैव, 36.8
6. तत्रैव, 45, 22–26; 66, 11–12; 6,1; 16, 27
7. तत्रैव, 13, 21
8. तत्रैव, 45, 23

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

9. तत्रैव, 6, 2
10. तत्रैव, 4, 29
11. तत्रैव, 42, 23–24
12. तत्रैव, 55, 12
13. रामायण, उत्तरकाण्ड, 13, 21–22
14. तत्रैव, बालकाण्ड, 36, 26
15. तत्रैव, 36, 16–21; 36, 14–20; 43, 2; उत्तरकाण्ड, 4, 28–30; 13, 22; 16, 32; 87, 12–16
16. तत्रैव, 35, 16; 36, 21; उत्तरकाण्ड, 87, 11
17. रामायण, उत्तरकाण्ड, 4, 27; 13, 23; 6, 26–30
18. तत्रैव, 13, 23
19. विस्तार के लिए द्रष्टव्य– यदुवंशी : शैवमत, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1988, पृष्ठ– 59
20. रामायण, बालकाण्ड, 36, 26; उत्तरकाण्ड, 16, 1
21. तत्रैव, 45, 18–26
22. विस्तार के लिए द्रष्टव्य– यदुवंशी : शैवमत, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1988, पृष्ठ– 60
23. रामायण, बालकाण्ड, 42–43
24. तत्रैव, 35, 13–20
25. रामायण, उत्तरकाण्ड, 6, 3
26. विस्तार के लिए द्रष्टव्य– यदुवंशी : शैवमत, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1988, पृष्ठ– 63
27. रामायण, उत्तरकाण्ड, 16, 34
28. तत्रैव, 4, 29
29. तत्रैव, 6, 3
30. रामायण, बालकाण्ड, 43, 6; उत्तरकाण्ड, 4, 32; 16, 27; 87, 11
31. रामायण युद्धकाण्ड, 17, 3; उत्तरकाण्ड, 16, 35; 87, 12
32. विस्तार के लिए द्रष्टव्य– यदुवंशी : शैवमत, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1988, पृष्ठ– 65–66
33. रामायण, उत्तरकाण्ड, 16,8

WRITERS VIEW
An Interdisciplinary, bilingual, bi-annual, a peer review or refereed, Indexed & Open Accesses International Research Journal
Vol. 5 No. 2 VIJAYADASHMI, Vikram Samvat 2077 Year 2(
ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

आचार्य सतीश चन्द्र मित्तलजी का इतिहास विषय में योगदान

डॉ. सुधाकर मिश्र

राष्ट्रवादी विचारक इतिहास के प्रति मानवीय एवं कर्मसाधक दृष्टि रखने वाले आचार्य सतीशचन्द्र मित्तल राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इतिहास को सामाजिक विज्ञान के संप्रत्यय के विकास एवं गत्यात्मक तथ्यों के साथ जोड़कर इतिहास को समझने, पढ़ने एवं काम करने के लिए प्रेरित किए थे। आचार्य का इतिहास के प्रति दृष्टिकोण बहुत सरल, मानवीय एवं मूल्यपरक था, क्योकि उनका इतिहास विषय से आत्मीय लगाव एवं सार्वभौमिक जुड़ाव था।

आचार्य मित्तल जी अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के राष्ट्रीय अध्यक्ष के पद को सुशोभित किए। यह राष्ट्रीय संस्था इतिहास को राष्ट्रवादी विचारों एवं राष्ट्रवादी मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में समझने, समझाने का काम कर रही है। इतिहास को राष्ट्रीय विचारों एवं राष्ट्रीय मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में समझकर ही मानव जाति एवं मानव समुदाय अपने ऐतिहासिक गौरव को प्राप्त कर सकता है।

मित्तलजी का राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीयस्तर पर इतिहास विषय को सांस्कृतिक आन्दोलन के रूप में दीक्षित किए, एवं इतिहास को जाने, समझे बिना हम अपने गौरव को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। कोई राष्ट्र, राज्य संगठन एवं व्यक्ति अपने इतिहास के गौरवमयी संस्कृति को समझकर ही राष्ट्र निर्माण के कार्य को मजबूती प्रदान कर सकता है।

सहायक आचार्य, स्वामी श्रद्धानन्द कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

आचार्य मित्तल जी का इतिहास के राष्ट्रीय पक्षों का आत्मीय समर्थन एवं वैचारिकी समर्थन इसी तथ्य से प्रकट होता है कि उन्होंने वेण्डी डोनिजर (Wendy Donizer) की पुस्तक 'The Hindus: An alternative History' के प्रकाशन पर प्रतिबंध का वकालत किया था। मित्तल जी का आधुनिक भारतीय राष्ट्रीय इतिहास में अभूतपूर्व योगदान था। मित्तलजी का इतिहास के प्रति गहरी रूचि एवं राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति राष्ट्रवादी परिप्रेक्ष्य, आधुनिक उपागमों से अध्ययन, राष्ट्रीय आन्दोलन के महानायकों को समझने, उनको अपने व्यक्तित्व के स्तर पर ढालने में महत्वपूर्ण योग दिया था।

आदरणीय मित्तलजी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए आदरणीय बालमुकुन्दजी का कहना है कि ''जिन्दगी वही है, जो जीवनपर्यन्त काम करे।'' आचार्य मित्तल जी ने अपने जीवन में इस उक्ति को साकार किए, एवं जीवन पर्यन्त तक काम किए। वह एक महामानव है, वह सर्वत्र विद्यमान है क्योंकि उनका ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में इतनी प्रासंगिकता एंव उपादेयता है कि वह सर्वत्र विद्यमान है। क्योंकि उनका ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में इतनी प्रासंगिकता एवं उपदेयता है कि वह अपने कृतित्व से अमरत्व प्राप्त कर लिए हैं।

मित्तलजी इतिहास के 1947–2014 तक के काल को ''भ्रम का काल'' कहा है, क्योंकि इस काल में निश्चित विचारधारा एवं एक सही दिशा का अभाव है।

मित्तलजी एक अहरनिष तपस्वी थे, वह अपने कृत्तित्व के कारण इतिहास में अमरत्व को प्राप्त कर लिए थे। अपने कार्यों की उपादेयता के कारण अमरत्व को प्राप्त कर लिये थे। मित्तल जी ने 'माध्व संस्कृति न्यास' के अध्यक्ष के तौर पर न्यास के उत्थान एवं प्रगति के लिए सदैव तत्पर रहते थे।

1942 के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' को मित्तलजी ने आधुनिक भारत के अंतर्गत इतना सरल, ऐतिहासिक उपागम के तहत समझाया कि भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में भारत छोड़ो आन्दोलन मूल रूप में किसान, विद्यार्थी एवं स्वतन्त्रता आन्दोलन के रूप में परिभाषित रहा है। गांधी जी द्वारा प्रकाशित अखबार 'हरिजन' में गाँधी जी के उद्धरण को ऐसे सरल एवं उपादेयता के साथ बताए कि जनसामान्य के मानस पटल पर छा गए। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं के व्यक्तित्व का मूल्यांकन किए था। गाँधीवादी विचारधारा एवं गाँधीवादी चिंतकों को अत्यन्त सरल भाव से रेखांकित किए थे। साम्यवादी आन्दोलन एवं साम्यवादी विचारधारा के विषय में मित्तलजी ने स्पष्ट बात की थी, एवं इन आन्दोलनों के विषय में ज्ञानात्मक आधार पर आलोचना किया था।

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

मित्तलजी ने 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' को '1857 के महाविद्रोह' का परिष्कृत एवं उत्तरवर्ती आन्दोलन कहा था। उन्होंने 1942 के आन्दोलन को ''विद्यार्थियों का आन्दोलन'' कहा, एवं भारत छोड़ो आन्दोलन को 'किसानों का आन्दोलन' कहा था, एवं किसानों की भूमिका को रेखांकित किया था एवं इस आन्दोलन को किसान या कृषक आन्दोलन के रूप में मूल्यांकन किया था।

इनका व्यक्तित्व सरल, मधुर एवं जीवन तथा विचारधारा को ऊर्जित करने वाला था। उनका ऐसा प्राध्यापक व्यक्तित्व था, जाो आध्यात्मिक शीलगुणों से भरा था, उनके पाथेय को पाकर इतिहास को सरलता से समझा जाता था, एवं इतिहास के प्रति रूचि को बढ़ा देती थी। आधुनिक इतिहास को राष्ट्रवादी मूल्यों के साथ समाहित करके, राष्ट्रवादी विचार के सबल पक्ष को समायोजित किया कि इतिहास राष्ट्रवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति है।

मित्तलजी का ऋषितुल्य व्यक्तित्व, इतिहास के प्रति अध्येता दृष्टिकोण, इनका कार्य करने का इतनी आकर्षक एवं अवधरणा प्रधान दृष्टिकोण था, उनके सानिध्य में आने वाला प्रत्येक पाठक, अध्येता एवं विद्यार्थी विषय को सरल स्नप्रत्यय को समझ जाता था। इनके द्वारा दिए गए व्याख्यान अति सरल एवं सुग्राहय होते थे, जिससे इतिहास विषय महत्वपूर्ण, सरल एवं सुग्राहय होते थे, जिससे इतिहास विषय महत्त्वपूर्ण एवं ग्राहय हो जाता था।

मित्तलजी सन्ततुल्य, गुरुतुल्य, ऋषितुल्य थे। अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना में आदरणीय मनीषी का योगदान बहुत महत्त्वपूर्ण है। इतिहास अमृतरूपी जल है जो समस्त नदियों में प्रवाहित होता रहेगा। इतिहास–लेखन की दिशा में हमेशा रमे रहते थे।

WRITERS VIEW
An Interdisciplinary, bilingual, bi-annual, a peer review or refereed, Indexed & Open Accesses International Research Journal
Vol. 5 No. 2 VIJAYADASHMI, Vikram Samvat 2077 Year 2(
ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

Breast Feeding and Mother's Practices

Dr. Priyanka Raghav

ABSTRACT

This is a review article, which had studied to look into the trends of breastfeeding and mothers practices of breastfeeding among all previous years. Many articles and researches had studied and it shows that child's immunity is result of practices followed with child such as immunization, breastfeeding, vaccination, and colustrum. In ancient practices colustrum was not feeded to child with suggestions of elders, and vaccination was not much practiced with every child. Result in lifelong weaker immunity and increased child mortality which has been later focused by physicians and researchers. Todays word recognize importance of breastfeeding, child care, and vaccination.

KEY WORDS

breast feeding, vaccination, child mortality, immunity.

Ph.D

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

INTRODUCTION

Physicians and researchers in the United States and the rest of the developed world paid close attention to healthcare during the start of the twenty-first century. When compared to the previous century, it is clear that there has been a huge reduction. People in the early twentieth century were plagued by contagious diseases, combat would always result in casualties, and internal warfare are no exception. Enemies penetrate the body and destroy the DNA nucleus of the cells, despite the presence of powerful anti-oxidants.

Today's world recognises the importance of appropriate child care. New scientific procedures, in addition to international traditions, aim to maintain children healthy and developed in all situations. A modest example of this endeavour is the immunisation campaign. Medical services are becoming more readily available today, and infant mortality is reducing.

M Gupta and KN Agarwal- The role of parental and socioeconomic position in child immunisation and family planning - Indian Journal of Pediatrics In the year 1972, Vaccination can effectively reduce paediatric illnesses and death in underdeveloped nations. The Government of India launched a comprehensive immunisation programme in 1978 with the goal of protecting all pregnant women against tetanus and six diseases that can be prevented by vaccine. In comparison to the father's education, the mother's education is extremely important. When more children were born, immunisation was made under-practiced in order to increase the number of children immunised.

Due to a lack of understanding among mothers, the nationwide prevalence of various immunizations was as low as 45 percent to 52.66 percent of the incidences, according to a Times of India study conducted on July 11, 1995-1990-.

JP Gupta et al., and shaly. et al., Immunization Coverage Assessment Survey Of India Few Facts Indian Journal of Public Health 1990 and 1992 - He was a Delhi-based medical college clinic where it was discovered that 35% of women had got newborn vaccination. There was no information available about this.

The Children's Report TO. 01 December 1993- has reported tremendous success from several sections of the developing globe, according to the

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

publication. In the 1980s, the yearly mortality toll from measles was 2.5 million, but by 1993, it had reduced to 1 million. During the same time period, the annual incidence of diarrheal sickness fell from 40 lakhs to 30 lakhs, and the number of newborns dying from tetanus fell from one million to five lakhs.

According to a poll and findings by Dr. AK Pandey, National Channel Doordarshan on December 20, 2002, Muslim children were less likely to receive polio vaccines, owing to a lack of education and information. They recognise that this is one of the ways to lower their population. Efforts are being made, but the administration is heading in the right direction with a number of effective programmes and initiatives.

Child care in other areas -

All-feeding habits of newborns and toddlers in Najafgarh- The Indian German of Child Health 04 April 1962- D.K. Anand -feeding practises of infants and toddlers in Najafgarh, The Indian German of Child Health (1962), People's opinions on initiating breastfeeding were clear in their studies, with one group believing that the newborn should be breastfed. Breastfeeding should begin 6-12 hours after birth, according to one group, while 38.5 percent said breastfeeding should begin beyond 48 hours but within three days of birth.

Nestle view - Infant Nutrition in Developing Countries Nestle Comp 00 White Plyce (1979), According to the nestle, breastfeeding has never been practised in impoverished countries. Most working mothers are unable to breastfeed their children due to a lack of enough milk, which is caused by a lack of nutrients. As a result, it is required to provide it in the form of canned marketed baby food. According to RK Puri feeding and its influence on growth and development of infants - Indian Journal Pediatrics (1976), moms first chose long-term breast-feeding for the following reasons (42%): it is good, affordable, and accessible. Infants were fed on the recommendation of elders or physicians in 38% of cases (20 percent). According to a 1976 research, 788 percent of women gave their kids oil baths, in which oil was flung into the baby's eyes, nose, mouth, and ears. The majority of the mothers were unaware of the numerous negative repercussions of vomiting.

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

Other Infant Feeding Practices in Urban and Rural Areas of M.P. by R. K. Pataudi - Indian Journal of Pediatrics (1976)- "Most rural moms breastfed their infants while laying in bed, whereas urban mothers breastfed while sitting, since, according to medical practitioners, Breastfeeding while laying in bed increases the risk of ear problems in the newborn.

Relief System and Breast Feeding Among Philippines Poor Urban, Social Science and Medicine by E. L. Fernandez and G. M. Guthrich (1984). The newborn experienced diarrhoea, according to Fernandes' research in the Philippines' urban poor and de Joysa and colleagues' research in Zimbabwe's rural areas. When that happens, moms quit breastfeeding, but in Switzerland, mothers breastfeed their kids when they have diarrhoea, according to health care providers and family counsellors.

In October 1979, the World Health Organization (WHO) and UNICEF held a conference in Geneva on the importance of breast-feeding for newborns and young children. To the limit, there has been a big drop. There are several causes for this, including the fact that commercial companies aggressively promote the sale of infant food.

B.N.S Walia - Decrease in Breast Feeding in Chandigarh's Urban Population Over a Decade-Indian Pediatrics (1987), according to Walia and colleagues, Many factors contribute to the reduction in infant health, including a lack of expert care and bottle feeding. Early on, there is a lack of correct awareness about infant feeding procedures among health practitioners and the general public, as well as a lack of confidence among mothers.

From birth to one month, full-breast-feeding was prevalent in 42% of infants, but by four months, it had dropped to 20%. After that, it was reduced to 10% by six months; approximately 85 percent of the newborns were breastfed from birth to four months, and approximately 70% of the babies were breastfed until the age of one year.

The Journal of Family Welfare (1991), B. Tamagod K. Saroj-Region for not giving colostrum and the effectiveness of an educational campaign for promoting colostrum feeding. There were misconceptions/confusion among parents concerning colostrum, which was one of the reasons for not feeding

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

colostrum to newborn babies. On the recommendation of the moms, nurses, and doctors, colostrum was not given to the babies on numerous occasions.

Refrences –

1. Leo Jagat - Child and Guardian
2. Singh, Dr. Shyam Bihari Child Behavior Personality Bhatnagar Suresh Child Development and Family Relations
3. Kanal SP, Emotional development of the child.
4. Swami Kuppu Bali Psychology.
5. Raijada, Dr. Vipin Singh, Child Psychology
6. Trehan, Dr. P.S. Matrikala and Shishu Kala
7. Inoue, M., Binns, C. W., Otsuka, K., Jimba, M., & Matsubara, M. (2012). Infant feeding practices and breastfeeding duration in Japan: A review. *International breastfeeding journal*, *7*(1), 1-15.
8. Kimani-Murage, E. W., Madise, N. J., Fotso, J. C., Kyobutungi, C., Mutua, M. K., Gitau, T. M., & Yatich, N. (2011). Patterns and determinants of breastfeeding and complementary feeding practices in urban informal settlements, Nairobi Kenya. *BMC public health*, *11*(1), 1-11.
9. Vijayalakshmi, P., Susheela, T., & Mythili, D. (2015). Knowledge, attitudes, and breast feeding practices of postnatal mothers: A cross sectional survey. *International journal of health sciences*, *9*(4), 364.
10. Vijayalakshmi, P., Susheela, T., & Mythili, D. (2015). Knowledge, attitudes, and breast feeding practices of postnatal mothers: A cross sectional survey. *International journal of health sciences*, *9*(4), 364.

■

WRITERS VIEW
An Interdisciplinary, bilingual, bi-annual, a peer review or refereed, Indexed & Open Accesses International Research Journal
Vol. 5 No. 2 VIJAYADASHMI, Vikram Samvat 2077 Year 2(
ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

FORM IV

Statement about ownership and other particulars about newspaper (……..) to be published in the first issue every year after the last day of February

1. Place of publication	**GORAKHPUR**
2. Periodicity of its publication	**BI-ANNUAL**
3. Printer's Name	**DR. AJAY KUMAR SINGH**
Nationality	**INDIAN**
Address	**Q-133 RESERVE POLICE LINE, INFRONT OF ATTA CHAKKI, GORAKHPUR UP 273009**
4. Publisher's Name	**DR. AJAY KUMAR SINGH**
Nationality	**INDIAN**
Address	**Q-133 RESERVE POLICE LINE, INFRONT OF ATTA CHAKKI, GORAKHPUR UP 273009**
5. Editor's Name	**DR. AJAY KUMAR SINGH**
Nationality	**INDIAN**
Address	**Q-133 RESERVE POLICE LINE, INFRONT OF ATTA CHAKKI, GORAKHPUR UP 273009**

6. Names and addresses of individuals who own the newspaper and partners or shareholders holding More than one per cent of the total capital.

I, **DR. AJAY KUMAR SINGH** hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

AJAY KUMAR SINGH
Signature of Publisher

Date- Vijayadashami 2020

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

Author's Guidelines

- A Research paper should contain sufficient detail and references to the work.
- The authors should ensure that they have submitted their original works, and if the authors have used the work of other's then that has been appropriately cited.
- All those who have made significant contributions should be reported as co-authors. Where there are others who have participated in certain substantive aspects of the research should be acknowledged as contributors.
- When an author notices inaccuracy in his own published work, it is the author's duty to promptly notify the editor or publisher and cooperate with the editor to retract or correct the paper.

Guidelines

1. **Subjects:** Authors are requested to send only original and unpublished articles.
2. **Plagiarism:** Authors are requested to send their original work with a conclusive result. We normally permit not more than 25% plagiarism.
3. **General Format, Page Layout and Margins:** Standard A4 (210mm x 297mm) portrait page set-up should be used. Margins should be 1.78cm at left and right with top and bottom margin set to 2.54cm. Do not use any headers, footers or footnotes. No page numbers. All main text paragraphs, including the abstract, must be fully (left and right) justified. All text, including title, authors, headings, captions and body, will be in Times New Roman Font, in case of English or Kurtidev010, in case of Hindi. Paper text must be in two columns of 89 cm width each, with 0.51 cm spacing between the columns, font Size: 12 Line spacing 1.5.
4. **Title:** Time New Roman Font, in case of English or kurtidev010, in case of Hindi, 14, bold, centre, first alphabet capital.
5. **Author:** Author name are to be written in 12 pt. Bold & centre in font followed by designation, organization, address including state & country name.
6. **Abstract:** First page, top left column, title bold-left aligned, text from next line, 10 font, Italics and 150-200 words. The text must be fully left justified.
7. **Key words:** The keywords section begins with the world, "keyword" in 10pt, bold italics. There may be up to few keywords separated by commas.
8. **Section & Sub Section Heading:** 12 fonts, bold, centre, roman numbered in block capital letters, text after double space (eg. SECTION III) Sub heading: number small

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

alphabetic within bracket 10font, text single spacing (eg. (a) Classification). Sub Heading ; should be left aligned number small new roman within bracket 10 font, text single spacing (eg. (iii) characteristics). Introduction and conclusion must be included as separate sections ensure that introduction and literature survey is not more than 15% of total article size.

9. **Figures and Tables:** All inserts, figures, diagrams, photographs and tables must be centre- aligned, clear and appropriate for black/white or gray scale reproduction. Figures (eg.Fig No.1) must be numbered consecutively, 1, 2, etc, from start to finish of the paper, ignoring sections and subsections. Tables (eg. Table No.1) are also numbered consecutively,1,2 etc. (Close to text where mentioned).Figure number should appear below the figure. Table no. should appear above the table.
10. **Reference:** The Reference section begins with the world, "Reference" in 12 pt., bold, first letter bold and remain in small & should be numbered. Name of Author starting with surname with year of publication in bracket, then Topic, Name of Journal/Book in Italics, Volume Number, issue number in bracket, separated by Name of Journal in italics with colons, Name of publisher and page number.

Samples of Complete References

Printed Book

Gandhi, M. (1955) My experiment with Truth, Navajivan Publishing House, Ahmedabad, pp.125-130

Magazine Article

Essinger, J. (1991, May 28). Just another tool of your trade. Accountancy 108, pp. 91-125.

Journal Article

Armstrong, P. and Keevil, S. (1991). Partition of India. British History Journal 303(2), 105-109.

Interview

Santosh Shukla. (1996, January 10) Professor, Sanskrit Department, JNU - Delhi, 3:00 pm, Delhi, India.

World Wide Web Address

Burke, J. (1992, January/February). Children's research and methods: What media researchers are doing, Journal of Advertising Research, 32, RC2-RC3. [CDROM]. Available: UMI File: Business Periodicals Ondisk Item: 92-11501.

FTP

Watson, L, and Dallwitz, M.J. (1990, December). Grass genera of the world-interactive identification and information retrieval. Flora Online: An Electronic Publication of TAXACOM (22). [Online]. Available FTP: huh.harvard.edu, Directory: pub/newsletters/flora.online/issue22, File:022gra11.txt.

WRITERS VIEW
An Interdisciplinary, bilingual, bi-annual, a peer review or refereed, Indexed & Open Accesses International Research Journal
Vol. 5 No. 2 VIJAYADASHMI, Vikram Samvat 2077 Year 2(
ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

Review Process and Policy

As a publisher, we try to adhere to the norms and guidelines formulated by various scholarly societies and UGC to achieve international standards by maintaining quality in publication and by updating our publication system. We expect and encourage all the concerned people associated with the journal. In order to maintain transparency in publication, we encourage all—authors, editors, reviewers and other person/parties involved in the publication process, to avoid any form of conflicts of interest. The corresponding author is responsible for sending us the Conflict of Interest document agreed to and signed by other authors.

1. **Generation Information**
    a. Research Papers, Articles, Technical Reports, Analysis, Resources, Reviews, Perspectives, Progress articles and Insight articles will be peer-reviewed at the discretion of the editors.
    b. If other contributed articles present technical information, may be peer-reviewed at the discretion of the editors.
    c. About the peer-review process, we encourage reviewers to contact us through email.
2. **Criteria for Publication**
    We are constantly trying to raise the standards of our publications. We expect the same kind of commitment from authors to conform to the ethical norms by following our guidelines. Research paper should meet following general criteria:
    a. Quality of Research work and unpublished nature.
    b. Provides strong evidence for its conclusions.
    c. Novel, Innovative and Meaningful to specific field.
    d. Ideally, interesting to researchers in other related disciplines.
    e. In general paper should represent an advance in understanding likely to influence thinking in the field. There should be a discernible reason why the sent work deserves publication.
3. **Plagiarism Policy**
    Authors submitting with us are expected to have proper understanding about the plagiarism issues. Nothing should be copied in any form without proper acknowledgement or legal permission in any way that may violate other's intellectual rights. While they should include acknowledgement to

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

other's works, they should also take permission for using any material from the concerned persons themselves. The journal will not initiate any process nor will remain responsible for any kind of copyright violation.

4. **The Review Process**

   All submitted manuscripts are read by the editorial board. The article is subjected to plagiarism check with software available and rejected if plagiarism is beyond 25%. Editor may decide to get article reviewed by more than one levier. Only those papers that seem most likely to meet our editorial criteria are sent for formal review.

5. **Post Review/ Re review Process**

   We try to evaluate the strength of the arguments raised by each reviewer and by the authors. Our primary responsibilities are to our readers and to the intellectual community at large, and in deciding how best to serve them, we must weigh the claims of each paper against the many others also under consideration.

   We may return to reviewers for further advice, where the authors believe they have been misunderstood on points of fact. We therefore ask that reviewers should be willing to provide follow-up advice as requested.

   When reviewers agree to assess a paper, we consider this a commitment to review subsequent revisions. However, editors will not send are submitted papers back to the reviewers if it seems that the authors have not made a serious attempt to address the criticisms.

   We take reviewers' criticisms seriously; in particular, we are very reluctant to disregard technical criticisms. In cases where one reviewer alone opposes publication, we may consult the other reviewers as to whether s/he is applying an unduly critical standard. We occasionally bring in additional reviewers to resolve disputes, but we prefer to avoid doing so.

6. **Selection of Peer Reviewers**

   We choose reviewers on many factors, including expertise, reputation, specific recommendations and our own previous experience. We check with potential reviewers before sending them manuscripts to review.

ISSN-: 2456-3579
Impact Factor 2017- 4.584 SJIF
2018- 5.346 SJIF
email-editor.writersview@gmail.com

7. **Access to the Literature by Peer Reviewers**
   If a reviewer does not have access to any published paper that is necessary for evaluation of a submitted manuscript, the journal will supply the reviewer with a copy.
8. **Review Report**
   The primary purpose of the review is to provide the editors with the information needed to reach a decision but the review should also instruct the authors on how they can strengthen or improve their paper to the point where it may be acceptable. As far as possible, a negative review should explain to the authors the major weaknesses of their manuscript, so that authors can understand needs to be done to improve the manuscript. Confidential comments to the editor are welcome.
9. **Timing**
   We are committed to rapid editorial decisions and publication, and we believe that an efficient editorial process is a valuable service to our contributors or authors. We therefore ask reviewers to respond promptly within the number of days agreed.
10. **Anonymity**
    We do not release referees' identities to authors or to other reviewers unless a referee voluntarily signs their comments to the authors. Our preference is for referees to remain anonymous throughout the review process and beyond.
11. **Peer–Review Publication Policies**
    All submitted Research papers are sent for peer review. Authors are welcome to suggest suitable independent reviewers and may also request that the journal excludes one or two individuals. The journal sympathetically considers such requests and usually honors them, but the editor's decision on the choice of referees is final.
    Editors, authors and reviewers are required to keep confidential all details of the editorial and peer review process on submitted manuscripts. Reviewers should be aware that it is our policy to keep their names confidential and that we do our utmost to ensure this confidentiality. We cannot, however, guarantee to maintain this confidentiality in the face of a successful legal action to disclose identity.

Author's Guidelines

1. **Subjects:** Authors are requested to send only original and unpublished articles.
2. **Plagiarism:** Authors are requested to send their original work with a conclusive result.We normally permit not more than 25% plagiarism.
3. **General Format, Page Layout and Margins:** Standard A4 (210mm x 297mm) portrait page set-up should be used. Margins should be 1.78cm at left and right with top and bottom margin set to 2.54cm. Do not use any headers, footers or footnotes. No page numbers. All main text paragraphs, including the abstract, must be fully (left and right) justified. All text, including title, authors, headings, captions and body, will be in Times New Roman Font, in case of English or Kurtidev010, in case of Hindi. Paper text must be in two columns of 89 cm width each, with 0.51 cm spacing between the columns, font Size: 12 Line spacing 1.5.
4. **Title:** Time New Roman Font, in case of English or kurtidev010, in case of Hindi, 14, bold, centre, first alphabet capital.
5. Author: Author name are to be written in 12 pt. Bold & centre in font followed by designation, organization, address including state & country name.
6. **Abstract:** First page, top left column, title bold-left aligned, text from next line, 10 font, Italics and 150-200 words. The text must be fully left justified.
7. **Key words:** The keywords section begins with the world, "keyword" in 10pt, bold italics. There may be up to few keywords separated by commas.
8. **Section & Sub Section Heading:** 12 fonts, bold, centre, roman numbered in block capital letters, text after double space (eg. SECTION III) Sub heading: number small alphabetic within bracket 10font, text single spacing (eg. (a) Classification). Sub Heading ; should be left aligned number small new roman within bracket 10 font, text single spacing (eg. (iii) characteristics). Introduction and conclusion must be included as separate sections ensure that introduction and literature survey is not more than 15% of total article size.
9. **Figures and Tables:** All inserts, figures, diagrams, photographs and tables must be centre- aligned, clear and appropriate for black/white or gray scale reproduction. Figures (eg.Fig No.1) must be numbered consecutively, 1, 2, etc, from start to finish of the paper, ignoring sections and subsections. Tables (eg. Table No.1) are also numbered consecutively,1,2 etc. (Close to text where mentioned).Figure number should appear below the figure. Table no. should appear above the table.
10. **Reference:** The Reference section begins with the world, "Reference" in 12 pt., bold, first letter bold and remain in small & should be numbered. Name of Author starting with surname with year of publication in bracket, then Topic, Name of Journal/Book in Italics, Volume Number, issue number in bracket, separated by Name of Journal in italics with colons, Name of publisher and page number.

Samples of Complete References

Printed Book

Gandhi, M. (1955) My experiment with Truth, Navajivan Publishing House, Ahmedabad, pp.125-130

Magazine Article

Essinger, J. (1991, May 28). Just another tool of your trade. Accountancy 108, pp. 91-125.

Journal Article

Armstrong, P. and Keevil, S. (1991). Partition of India. British History Journal 303(2), 105-109.

Interview

Santosh Shukla. (1996, January 10) Professor, Sanskrit Department, JNU - Delhi, 3:00 pm, Delhi, India.

World Wide Web Address

Burke, J. (1992, January/February). Children's research and methods: What media researchers are doing, Journal of Advertising Research, 32, RC2-RC3. [CDROM]. Available: UMI File: Business Periodicals Ondisk Item: 92-11501.

FTP

Watson, L, and Dallwitz, M.J. (1990, December). Grass genera of the world - interactive identification and information retrieval. Flora Online: An Electronic Publication of TAXACOM (22). [Online]. Available FTP: huh.harvard.edu, Directory: pub/newsletters/flora.online/issue22, File:022gra11.txt.

Gorakhpur Journals

Website : http://www.gorakhpurjournals.in

Email : editor.gorakhpurjournals@gmail.com